कढ़ी में कोयला

उग्र-लिखित

नये - नये उपन्यास

- १ संगीत–सत्याग्रह
  (या गोआ विजय)
- ३ जादू की छड़ी
- ४ जुहू
- ५ महन्त मूज़ीराम महाराज

उग्र - प्रकाशन, दिल्ली;

गऊघाट, मिर्ज़ापुर (उ० प्र०)

कढ़ी में कोयला

★★ "उग्र-लिखित (कलकत्ता-रहस्य)
उपन्यास का 'मालेमस्त
मारवाड़ी'-खण्ड ★★

दिल्ली और गउघाट, मिर्ज़ापुर (उ. प्र.)

प्रकाशक
पाण्डेय बेचन शर्मा, 'उग्र'
गऊघाट, मिर्ज़ापुर (उ. प्र.)

प्रथम-संस्करण
मूल्य साढ़े तीन रुपया
३॥)

मुद्रक
जयन्ती प्रिंटिंग वर्क्स,
जामामस्जिद, देहली

ठाट...

● देखिये साहब, या तो आप इस उपन्यास को बिलकुल झूठ मानिये या बिलकुल सच। अगर आप एक ही संग इसे झूठ और सच दोनों ही मानेंगे तो आपका हठ भले रह जाय, सच क्या है इस का पता नहीं लगेगा।

● यह उपन्यास और इस में की बातें अगर झूठ हैं, तो, आप बुरा न मानें तथा कौए के पीछे न दौड़ कर कान टटोलें और अगर सच हैं, तो, परमात्मा या पाक परवरदिगार के लिये व्यक्ति और समाज के घातक-दोषों को दूर करने का उद्योग प्राणपण से करें।

● इस उपन्यास के सभी पात्र ख़याली हैं, नाम सभी काल्पनिक हैं—इस ढंग से गढ़े हुये, कि यथार्थ मालूम पड़ें। किसी के नाम से नाम या अक्ल से अक्ल अगर मिलता हो, तो उसे संयोग ही माना जाय।

● उपन्यास का उद्देश्य है—समाज या समाज-विशेष की बुराइयों का विशेष वर्णन कर उचित उपचार के लिये एक्स-रे फ़ोटो सामने रखना।

● जो आवश्यक मालूम पड़ा—सो लिखा। परिणाम उत्तर यह है, कि समाज स्वास्थ्य ? के लिये आवश्यक बात निर्भय कह देने से एक तरह का सुख-सा होता है, वही परिणाम है। इसके आगे मैं तो और कुछ नहीं जानता।

● कढ़ी में कोयला में जैसे एक या एकाधिक भारतीय समाज के बिगड़ते स्वास्थ्य पर नीरोग प्रकाश डालने की कोशिश मैंने की है, वैसी ही कोशिशें मैं एक जमाने से करता आ रहा हूँ। मेरे सभी

उपन्यास कहीं कम और सामाजिक रोगों के एक्स-रे फ़ोटो कहीं ज़ियादा हैं। 'चन्द हसीनों के खुतूत' हिन्दू-मुसलिम समस्या पर है, (बुधुआ की बेटी) 'मनुष्यानन्द' में अछूत समस्या है, 'दिल्ली का दलाल' में भगाई हुई युवतियों की समस्या है, 'शराबी' उपन्यास का विषय उस के नाम ही से विदित है। 'घंटा' और 'सरकार तुम्हारी आंखों' की मैं नहीं कह सकता, बाकी के मेरे सभी उपन्यास समस्यावाले ही हैं।

● कलकत्ते का—सारे भारत का क्यों नहीं ?—मालेमस्त मारवाड़ी, आज क्या अर्से, से उलझनदार समस्या-सा बना हुआ है। येनकेनप्रकारेण परायी लक्ष्मी मुट्ठी में करते ही मालेमस्त मारवाड़ी सोचता है, कि अब उसके भगवान बनने में शेष ही क्या रहा है। शंख, चक्र, गदा पद्मादि तो बाजार से भी होलसेल-भाव से इच्छा करते ही मंगाये जा सकते हैं।

● इस नये भगवान मालेमस्त मारवाड़ी का विरोध पुराने भगवान के समर्थन में मैं नहीं कर रहा हूँ। मेरे ख़याल से भगवान की तो अब ज़रूरत ही नहीं रही है—खास कर उस भगवान को जो पुरुषपुरातन होकर भी लक्ष्मी का पति बनता है। उस लक्ष्मी का जो चंचला हरजाई है ऐसी, कि जिसके पास चली जाती है वही अपने को नर से नारायण उर्फ़ लक्ष्मी नारायण समझने लगता है!

बस ।

१५ अगस्त १९५५

दिल्ली प्रवास

पाण्डेय बेचन शर्मा, उग्र

कढ़ी में कोयला

कढ़ी में कोयला

सूचना—प्रेस के भूतों की भूल से इस उपन्यास का १४ वाँ परिच्छेद पहले के स्थान पर छप गया हैं। अतः उपन्यास का शुभारम्भ विवाद-ग्रस्त और किंचित कम मनोरंजक हो गया है। इस लाचारी के लिये हम रसज्ञ पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हैं।

—लेखक

कलकत्ता किसका ?

बड़ा बाज़ार के विख्यात 'मारवाड़ी-भवन' के ग़ालीचा-गर्वित प्लेटफ़ार्म पर अभी दो ही तीन आदमी आये थे। हॉल अलबत्ता श्रोताओं से ठसाठस भर गया था। मंच वाले आदमियों में एक तो कलकत्ते का सुधारक मारवाड़ी राजमल जयपुरिया था और दूसरा स्थानीय नव प्रकाशित दैनिक 'दामोदर' का मैनेजिंग एडीटर लाभंकर।

"घमण्डी लाल जी नहीं आये!"—लाभंकर ने राजमल जयपुरिया को सुनाया!

'आते ही होंगे।"—राजमल जयपुरिया ने कलाई-घड़ी पर नज़र डाली—"अभी ५ मिनट और हैं—६ बजने में।"

"मगर, खूब पब्लिसिटी की आपने सेठ जी!"—लाभंकर ने चापलूसी की—"देखिए न, हॉल लोगों से भर गया। लोग भी बड़े बाज़ार के सभी वर्गों के। वैश्य लोग तो जैसे दल बाँध कर आये हों। बीकानेरी, जोधपुरी, माहेश्वरी, झालावाड़ी; उदयपुरी, जैन अग्रवाल, ओसवाल, दस्से, बिस्से, बायड़ी, खण्डेलवाल, भिवानीवाले, हरियाना वाले, विविध पोशाक-पगड़ियों में यहाँ पर एकत्रित हैं। साथ ही बाज़ार के मशहूर पैसापति भी सभी हैं; जैसे पोद्दार, बिरला, जालान बांगड़, राजगढ़िया, झुनझुनूवाला, मूंदड़ा, गोयनका, सिंहानिया, लोहिया, काइयाँ, कसेरा, टीबड़ेवाला, चमड़िया, सराफ, खेमका, कन्दोह, काबड़िया, रोड़िया, नाथानी। यह आप ही का पुरुषार्थ है। किसी अन्य के आह्वान पर इतने चुने-बिने लोग शायद ही एकत्र होते। विषय भी आज के जलसे का खूब ही चुना है आपने।"

"खूब विषय के कारण ही तो सबको बुलाया है"—जयपुरिया ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि इसी बहाने वे मारवाड़ी कुछ तथ्य तो जान लें जिन्हें सिवा पैसा-पैसा के दूसरी धुन नहीं। वे यह जान लें कि उनके पैसे के बारे में औरों की क्या राय है, क्या राय है उनके दावे के बारे में, कि कलकत्ता मारवाड़ियों का ही है।"

"अगर सभा पर समुचित नियन्त्रण न रक्खा गया, तो विषय से विषयान्तर, तत्व-बोध से तू-तू-मैं-मैं की नौबत भी आ सकती है। क्योंकि दुर्भाग्य से, भावुकता में बहे बग़ैर केवल सार जानने के लिये हम लोग वाद-विवाद कर ही नहीं सकते।"—दामोदर दैनिक के मैनेजिंग एडीटर ने कहा।

"यह दुःख की बात है,"—जयपुरिया ने गम्भीरता से सुनाया—"और आपकी आशंका निर्मूल नहीं है। ऐसे विषयों पर अक्सर बात का बतंगड़ बन जाता है। फिर भी, लोक-शिक्षा के लिए ऐसे ख़तरे

उठाने ही होंगे। लीजिए 'जगरक्षक' के संचालक श्री घमण्डी लाल जी पधार रहे हैं। आइये ! पधारिये !"

"मुझे देर तो नहीं हुई ?"—जेबी-घड़ी निकालते हुए घमण्डी लाल ने कहा—"दैनिक पत्र-प्रकाशन के धन्धे से शायद ही दूसरा कोई अधिक व्यस्त-व्यापार हो। बीस घंटे टेलीफ़ोन, चौबीस घंटे टेलीप्रिण्टर...। मैं लेट तो नहीं हूँ ?"—घड़ी देख कर जेब में रखते हुए घमण्डी लाल ने कहा—"अभी ६ बजने में दो मिनट बाक़ी हैं।"

"अब कारवाई शुरू होनी चाहिए।" राजमल ने सुनाया।

"पहले यह तो बताइये"—घमण्डी लाल ने पूछा—"सभा में मार-पीट की नौबत तो नहीं आयेगी ? विषय आपने बीहड़ चुना है और बोलते वक्त बहक कर बमकते हैं सभी।"

"तो आप भी डरते हैं ?"—राजमल ने पूछा।

"अरे भाई, क़लम वालों की लड़ाई क़लम से या—'टोटल वार' हो तो—ज़ुबान से भी होती है। हाथापाई, धौलधप्पा, धक्कामुक्की, लत्तम-जुत्तम आदि हमारा शेवा नहीं।"

"भरोसा रखें,"—जयपुरिया ने कहा—"ऐसा कुछ भी होने वाला नहीं। अब सभा शुरू होनी चाहिए।"—मंच पर रखे टेबल-कुर्सी के निकट आकर उसने जनता को अपनी ओर आकर्षित किया—

"सज्जनो !"—राजमल जयपुरिया ने शुरू किया—"यद्यपि आज की सभा 'मारवाड़ी भवन' में बुलाई गई है, पर, चर्चा का विषय सार्वजनीन है, सारे कलकत्ता वासियों से सम्बन्ध रखने वाला है। अस्तु इस सबसे सम्बन्धित सभा का सभापतित्व उसी को अधिक शोभा दे सकेगा जिसका सम्बन्ध सभी से हो। सौभाग्य से हमारे मित्र श्री घमण्डी लाल ज़ी, एम० ए०, संचालक 'जगरक्षक' यहाँ उपस्थित हैं। आप सब की

तरफ़ से हम श्री घमण्डी लाल जी से आज की सभा का सभापतित्व करने की प्रार्थना करते हैं।"

राजमल जपुरिया का अनुमोदन नव प्रकाशित दैनिक 'दामोदर' के मैनेजिंग एडीटर पण्डित लाभंकर जी ने केकी-कण्ठ से किया। घमण्डी लाल मसनद पर बैठते ही खड़ा होकर बोलने लगा—"सज्जनो और देवियो! आज की सभा का विषय है—'कलकत्ता किसका?' हम देखते हैं कि अक्सर सभी दावा करते हैं कि कलकत्ता उन्हींका ख़ास तौर से है। केवल ज्ञान-अर्जन या मनोरंजन के लिए हम यह चर्चा करेंगे। चर्चा का उद्देश्य वर्ग या जाति पर कीचड़ उछालना या उसकी कलंगी में सुर्ख़ाब के पर लगाना नहीं। पहले मैं अपने मित्र श्री राजमल जी जपुरिया से ही आग्रह करूँगा। कृपया वह हमें बतलाएं कि उनकी निगाहों में कलकत्ता किसका है?"

"सज्जनो!"—राजमल ने शुरू किया—"सभापति महोदय ने मुझे ही आरम्भ करने की आज्ञा देकर संकट में डाल दिया। फिर भी, आज्ञाकारी के लिए आज्ञा आज्ञा ही है।"

"सभापति महोदय!"—सभा में से कोई बोला—"ऐसी सभामें श्रोताओं में से भी चन्द लोगों को बोलने या अपनी राय ज़ाहिर करने का हक़ मिलना चाहिये। मेरी राय है कि 'कलकत्ता किसका है' विषय पर आप सबसे पहले प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट कर्मिणी कुमारी प्रियंवदा जी का मत जानें।"

"मैं अपने अपरिचित मित्र के प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।"—नारी के प्रति आदरभाव से राजमल सहर्ष घोषित किया।

"अब सिवा अनुमोदन करने के" सभापति ने कहा—"मेरे सामने दूसरा मार्ग नहीं। अतः सुश्री कुमारी प्रियंवदा जी से मेरी प्रार्थना है,

कि वह अपनी राय हम सबको बतलाने की कृपा करें। देवियों के रहते मैंने पहले पुरुषों का जो आह्वान किया वह मेरी भूल थी, जिसकी मैं क्षमा चाहता हूँ।"

"समझदारो और साथियों।"—प्रियंवदा ने शुरू किया—" समझदार वे जो कि समय रहते समझ जाएँ समय का संकेत, और साथी से मुराद वे जो नासमझों की आँखों में अंगुली डाल कर समझाने पर सन्नद्ध हों-समुदाय के हितार्थ। सभापति जी ने फ़रमाया है, कि मैं उनको क्षमा करदूँ—नारी को 'निग्लेक्ट' करने के लिए! पर, मैं कलकत्ते को उस महानारी की जागीर मानती हूँ जिसका नाम है महाकाली। चित्रों में आपने जिसे अपना गला काट, हथेली पर सर ले, अपना ही रक्तपान करते और विश्वपति याने स्वपति-को चरणों से चंपरते देखा होगा। याने यह कलकत्ता उसका है जो अपने या अपनों को भी क्षमा नहीं करती। याने यह कलकत्ता जहां तक सुन्दर है, सम्पन्न है, स्वस्थ है, सशक्त है,वहाँ तक स्त्री का और जहां तक भद्देस है, भोंडा है, रंक, रोगी, दुर्बल, दुष्ट है वहाँ तक पुरुष का है। जानना यह ज़रूरी यह नहीं कि कलकत्ता किस जाति या वर्ग का है? ज़रूरी यह है, कि कलकत्ते का अस्तित्व-व्यक्तित्व पोषित और पुष्ट किस शक्ति से होता है। कलकत्ता उसी का है।

"कलकत्ता बंगाली, देसवाली का नहीं; काली का है; याने स्त्रियों का है। मेरा यह निश्चित मत है कि स्थिति की अप्रत्यक्ष सूत्रधारिणी महिलाएँ न होतीं, तो लोभी मारवाड़ी यहूदी हो गया होता—यहूदी से भी बदतर। उसी तरह करुणाकलित हृदयवाली कोमलांगिनियाँ यदि न होतीं, तो बंगाली 'नाज़ी' जर्मन हो गया होता। क्यों? आदमी के दिल में शीतलता न होती, तो क्या होता? क्या होता अगर मनुष्य के

मुख पर मुस्कान न होती? होता दहकता नरक! सरासर राक्षस! आदमी आदमी ही न होता।

"वैसे ही, समझदारो! और साथियो! स्त्री-जाति कहीं सती की तरह और कहीं असती की तरह इस नष्टमति शहर में दुर्गति सह-सह कर जानवर अक्षर-अक्षर को नर सुन्दर-सुन्दर-अमर बनाती है। पुरुष शासन करता है। इसकी ईर्ष्या हमारे मन में नहीं; पर, 'परिवार की मालकिन की हैसियत से) उसके अनाचार के कारण सबको कष्ट में देख हमें केवल खेद ही नहीं होता क्रोध भी आता है। पुरुष की असुन्दरता का परिणाम है यहाँ का "अण्डरवर्ल्ड"या भूगर्भस्थ निशाचर-समुदाय-जेबकट, छुरेबाज, हत्यारे, डाकू, आततायी। पुरुष की राक्षसता की प्रदर्शिनी है—सोनागाछी, रामबगान याने लक्ष-लक्ष लक्ष्मियों का लोहू- लुहान वध-बलिदान। ये मुहल्ले पुरुष-गवर्नमेण्ट के ज्ञान-मान पर गम्भीर आरोप की तरह विद्यमान है। कदाचित् स्त्रियों के शासन में पुरुषों को देह- व्यवसाय पर बाध्य होना होता तो हमें लोग क्या कहते? हम क्या न कहें पुरुषों को जिनके "गोबर-मेण्ट" में विवश बालाएँ अपना तन बेचती हैं—धन के लिए! याने कन के लिए मन! या कांच के लिए कंचन!!"

इसी समय सभापति जी ने समय-समाप्ति-सूचक घण्टी बजाई।

"मैं कह चुकी और फिर भी कहती हूँ न्याय-भरे-दावे से कलकत्ता पुरुषों का नहीं, महिलाओं का है। पुरुष बहुत दिनों तक मूसलों ढोल बजा चुके, पोल अपनी दिखला चुके। अब वे हटें और माता काली के कलकत्ते का सूत्र-संचालन माताओं को करने दें। मैं कहती हूँ, एक ही वर्ष में, हम कलकत्ते से वेश्यालय, मदिरालय, जुआलय और तरह-के कुकर्मालयों को बिल्कुल बन्द कर नरक के अंधेरे में स्वर्ग की चाँदनी खिला देंगी। मैं कहती हूँ, उस चित्र का ध्यान कर पुरुष समय रहते

संभलें जिस चित्र में आप सबने महामाया को अपना गला काट कर हथेली पर रखे, अपना ही रक्तपान करते और विश्वपति--याने स्वपति —को चरणों से "चपरते' देखा होगा।"

सभा में उपस्थित पुराने टाइप के मारवाड़ी प्रियंवदा के भाषण पर मुस्कराए--"किसकी छोरी है!"—कौड़ीमल केडिया ने पूछा—"ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ कितनी ढीठ हो गई हैं!"

"पूछो'—सेठ टीबड़े वाले ने कहा—"लुगाइयां शासन करेंगी, तो बच्चे कौन पैदा करेगा? शासन करने वालों की शक्ल ही और होती है—मूंछदार, दाढ़ीदार, रुआबदार।"

"अच्छा—स्त्रियों के गाल पर बाल क्यों नहीं आते?"—टीबड़े वाले की बगल में बैठा मटरूमल कसेरा बोला।

"इसलिए, कि उनका मुंह चूमने-क़ाबिल चिकना बना रहे। यह प्रियंवदा किसकी लड़की है?"

"भोला शंकर लोहिया की"—कौड़ीमल केडिया ने कहा—"बी० ए० पास है।"

"पति इसका कौन है?"—टीबड़े वाले ने पूछा।

"पति परतन्त्रता का प्रतीक होता है, बोल कर, इसने अभी तक शादी ही नहीं की है।"

"ये पढ़ी-लिखी छोरियाँ।" मटरू मल कसेरा ने सुनाया—"शादी-होने के पहले इसी तरह बलबलाती हैं; जैसे पहाड़ पर चढ़ने के पहले ऊंटनी। सच्चे मर्द से पाला पड़ते ही या कच्चे-बच्चे होते ही, ये सब बिलकुल ठण्डी पड़ जाती हैं।"

इसी वक्त सभापति घमंडी लाल ने अपना मत व्यक्त करने के लिए "श्री राजमल जी जैपुरिया" को पुनः याद किया।

"सभापति महोदय ! महिलाओ ! और मित्रो ! आज हमारे सामने जो विचारणीय विषय है, उस पर मैंने काफ़ी सोचा-विचारा है। समय कम होने से और वक्ता बहुत—मैं संक्षेप में ही कहूँगा। अगर इस महानगरी का प्राणाधार ब्याहार-रोज़गार ही है, तो सिवाय व्यापारी-रोज़गारी के कलकत्ता किसका होगा ? अब प्रश्न यह उठता है कि व्यापारी असिल हैं कौन ? बेशक, बंगाली नहीं; बला से, वह यहाँ के निवासी-अदिवासी हों। बंगाली बम बना लें, रक़म बनाना दूसरी चीज़ है। बंगाली की खोपड़ी में ज्ञान साकार आ जाय, वैज्ञानिक आविष्कार भी आ जाय, पर शेयर बाज़ार नहीं आ सकता। आज नहीं, प्रायः दो-सौ वर्षों से (जब से इस शहर का अस्तित्व है) व्यापारी-समाज के ही हाथ में इस नगरी की सारी हलचलें रही हैं। कौन है वह व्यापारी-समाज ? यह मैं अपने मुंह से बतलाऊँ, तो आप मेरी न्याय-बुद्धि को पक्षपात पीड़ित कह सकते हैं; अतः, आप सारे कलकत्ते में आँखें उठा कर देखें, तलाशें, कि कौन है वह बड़भागी समाज जिसका इस शहर पर व्यापारिक-राज्य है ? आपको जानने में देर न लगेगी। वह समाज हमारा मारवाड़ी समाज ही है। (सभा में तालियों की घोर गड़गड़ाहट) आप कहेंगे मुसलमान क्यों नहीं कलकत्ते का मालिक है, जिसके शासन-काल में इस शहर की नींव पड़ी ? मगर, मुसलमान का रोज़गार से क्या वास्ता साहबान ? शाहंशाह औरंगज़ेब के पोते अज़ीमुश्शान ने महज़ सोलह सौ रुपये पर सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता नामक गांवों की ज़मीन्दारी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरों के हाथ बेच दी थी। इतिहास के पण्डितों से बात छिपी नहीं, कि उसी अज़ीमुश्शान ने एक बार प्रान्त के व्यापार में भी हाथ डाला था। कैसे ? चटगांव बन्दरगाह पर उतरनेवाले माल को वह खुद ख़रीद लेता 'सौदा-ए-आम' नाम से और फिर वही माल मुनाफ़े पर 'सौदा-ए-ख़ास' के नाम से

व्यापारियों को बेच दिया जाता। ख़रीद और बिक्री के दर भी बहुत कुछ उसी की सनक पर मुनहसर होते।—"तेरा यह 'सौदा-ए-ख़ास' रियाआ पर ज़ुल्म है"—औरंगज़ेब ने अपने व्यापारी पोते को दिल्ली से लिख कर डाटा था—"मैं इसे 'सौदा-ए-ख़ाम (कच्चा)' कहूँगा। अपनी इस सौदागरी से तू अपने को सौदाई (पागल) साबित कर रहा है।" यह एक कट्टर मुसलमान का मत है, कि मुसलमान सौदाई भले ही हो जाय, पर सौदागर नहीं बन सकता है।

"सज्जनो! आज नहीं, बात सन् १७०४ की है। उस समय दिल्लीश्वर औरंगज़ेब से मुर्शिद कुली ख़ाँ की उपाधि पाकर कारतलब ख़ाँ जब बंगाल और उड़ीसा का नायब नाज़िम बनाया गया तब प्रजा पर लाख सख़्तियाँ करके भी न तो वह कर वसूल कर पाया और न इतर व्यापारों से बंगाल या दिल्ली का खज़ाना ही भर सका। लाचार उसे उस साहूकार की मदद लेनी पड़ी जो व्यापार के सार का अच्छा जानकार था। उसने दीवान सेठ मानिक चन्द के हाथों में राजस्व या उगाही तथा टकसाल का काम सौंपा। आगे चलकर उन्हीं सेठ मानिक चन्द की गोद सेठ फ़तहचन्द आए जिन्हें सम्राट मोहम्मद शाह ने 'जगत्‌सेठ' की उपाधि से सम्मानित किया था। क्यों साहब, फतहचन्द जगत्‌सेठ क्यों बनाये गये? कहते हैं, उन्होंने अन्न या मुद्रा देकर दिल्ली का अन्न-संकट या मुद्रा-संकट दूर किया था। साथ ही ऐसे ही संकटों से उत्तर भारत की भी रक्षा की थी। तब सम्राट ने उन्हें 'जगत्‌सेठ' बनाया था।

"मैं जानता हूँ—और जानकार जानते हैं—जगत्‌सेठ न होते तो अंग्रेज़ न होते और अंग्रेज़ न होते तो सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता गांवों का समुच्चय यह कलकत्ता न होता। अब कलकत्ता मारवाड़ियों का है यह साबित करने के लिए इतना ही प्रमाणित करना पर्याप्त

होगा कि सेठ मानिक चन्द या जगत्सेठ फ़तहचन्द मारवाड़ी थे। सन् १६६२ में नागौर से आकर हीरानन्द साह नामक जिस युवक ने पटने में लेन-देन की कोठी क़ायम की थी वह मारवाड़ी ही तो था। उन्हीं हीरानन्द जी के पांचवें पुत्र थे सेठ मानिकचन्द जी जिनकी गोद आकर सेठ फतेहचन्द जगत्सेठ हुए थे। कोई प्रश्न कर सकता है, कि जगत्सेठ अग्रवाल थे, पंजाब प्रान्तस्थ अग्रोहा के अवतारी लक्ष्मीपति महाराज अग्रसेन के वंशज। ठीक है। पंजाब से आकर मारवाड़ में फैलने वाले अग्रवाल ही मारवाड़ी हैं और हैं महाराज अग्रसेन जी के वंशज।

"और अहा हा! ऐसे साम्यवादी राजा थे अग्रसेन जी, कि उनके काल को याद कर उनकी औलाद का भी विश्वास करना चाहिए। उनकी राजधानी अग्रोहा में करोड़पति से कम कोई था ही नहीं। वहाँ कभी-कदाच कोई भी भूला-भटका अभागा अगर पहुँच आता, तो वहाँ के उदार नागरिक सोने की एक-एक ईंट उपहार देकर उसको ज़रों से ज़रदार बना देते थे। कलकत्ता मारवाड़ी का है, इससे किसी को घबराने, डरने की कोई ज़रूरत नहीं। मां पर पूत पिता पर घोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा न्याय से आज भी 'मारवाड़ी' जितना उदार है उतना दूसरा कोई नहीं। पिछले २०० वर्षों में इस देश में जितने मन्दिर, कूएं, धर्मशालाएं मारवाड़ियों ने बनवाई हैं, उतने और किसी भी समाज ने नहीं। कलकत्ते से कराची और हिमालय से कन्या कुमारी तक मारवाड़ियों की दानशीलता के प्रत्यक्ष प्रमाण प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं।

"एक बात और मैं सविनय कहना चाहता हूँ। वह यह, कि अन्य समाजों को तो कलकत्ते पर क़ब्ज़ा करना पड़ेगा; पर मारवाड़ी समाज का कब्ज़ा तो आज भी इस पर सवा सोलह आने है। सो, मारवाड़ियों को कलकत्ते पर क़ब्ज़ा पाने के लिये किसी व्यष्टि या समष्टि का वोट

पाने की अपेक्षा नहीं। सिंह किसी के तिलक करने से वनराज नहीं बनता। यही गति पराक्रमी पुरुषों की है।"

राजमल जयपुरिया के भाषण समाप्त करते ही सभा में उपस्थित अधिकांश मारवाड़ी हर्ष-चंचल हो उठे। तालियों की तुमुल-ध्वनि देर तक होती रही। इसी समय सभापति ने उठ कर पब्लिक को दो-तीन पुर्ज़े पढ़ कर सुनाये।

"श्री मटरूमल कसेरा ने राजमल जी के भाषण से प्रभावित होकर सौ मन भूसा देने की सूचना दी है—इसलिए कि राजमल जी अपने इच्छानुसार गायों या सांडों को खिला कर रुपये में सोलह आने पुण्य और यश के भागी बनें।" (सभा में करतल-ध्वनि)

"साथ ही"—सभापति ने दूसरा पुर्ज़ा पढ़ा—"श्री कल्याणमल जी केडिया ने एक ठेला बासी रोटियां देने का वादा किया है—इसलिए कि राजमल जी अपने हाथों कंगलों में बांट कर उनके आशीर्वाद से मारवाड़ी समाज को कलकत्ते का राजा बनाने के लिए अमर बन कर जियें।" (करतल-ध्वनि और सीटियों की आवाज़ें)

"तीसरा पुर्ज़ा हमारे मित्र और कलकत्ते के सुपरिचित धनपति श्री घीसालाल जी बीकानेरी का है"—सभापति ने सुनाया—"घीसालाल जी ने, स्वयं ऐसे सुधरों में विश्वास न रखते हुए भी, राजमल जी के सुधारक प्राणों को प्रफुल्लित करने के लिए दो अक्षत-योनि विधवाओं के विवाह का सारा ख़र्चा देने और फिर वर-वधुओं को अपने विशाल भवन $\frac{3}{1}$ सीताराम स्ट्रीट में फ़्री क्वार्टर देने की सूचना दी है।"

"क्या दान है!"—जनता में अन्तिम 'आफ़र' को लेकर चर्चा चली।

"अक्षत-योनि विधवा! फिर, वर-वधुओं को फ़्री-क्वार्टर। इसे कहते हैं दान-का-दान और इन्वेस्टमेण्ट का इन्वेस्टमेन्ट।"

"इसे कहते हैं विशुद्ध-मारवाड़ी दान। दान जिसमें अर्थ—अर्थ जिसमें अनर्थ ."

"अख़बार वाले याने सभापति महोदय जानते हैं कि घीसालाल किस ढंग का आदमी है; फिर भी, ऐसा नीच 'आफ़र' निडर सबको पढ़ सुनाते हैं। सभा न हुई मज़ाक़ हो गई। जब्बर चोर, सेंध में गावे।"

"शान्ति! शान्ति!"—सभापति ने पुकारा—"अब मैं सुविख्यात बंगाली विद्वान् और उग्रवादी आचार्य खगेन्द्र पाल महाशय से प्रार्थना करता हूँ कि वह प्रस्तुत विषय पर अपनी राय सभा के सामने ज़ाहिर करने की कृपा करें।"

"सभापति महोदय! आदमियो! ग़रीबों! और अमीरो!"—खगेन्द्र पाल ने सुनाया—"मैं हिन्दी में ही बोलने की कोशिश करूँगा। त्रुटियों के लिए क्षमा-प्रार्थना पहले से ही कर लेता हूँ। मैं सभापति महोदय का आभारी हूँ, कि उन्होंने अनायास ही मुझे बोलने का सुअवसर दिया। यह मुझे न बुलाते तो भी मैं इस विषय पर अपनी नाकिस राय ज़ाहिर करने की इजाज़त चाहता। क्योंकि, मेरे विद्वान् और बुद्धिमान् मित्र श्री राजमल जी जयपुरिया के भव्य-भाषण से अनेक 'चैलेंज' सामने आए हैं। भ्रम भी जयपुरिया जी के भाषण से कम नहीं फैलता। और मैं उनके भाषण की तीव्र-भर्त्सना करना चाहता हूँ। पर, प्रारम्भ में ही, प्रार्थना करना चाहता हूँ, कि मेरे उत्तर की तीव्रता का ग़लत अर्थ न लगाया जाय। याने मुझे मारवाड़ी समाज का अहित-चिन्तक न माना जाय। मैं बड़े विनय के साथ अपने भाई श्री राजमल जयपुरिया के प्रत्येक दावे को अस्वीकार करता हूँ। कलकत्ता यह काली का हो या काल का, पर मारवाड़ी का तो सात जन्म में नहीं हो सकता है। जयपुरिया जी ने कहा, बंगाली की खोपड़ी में 'शेयर बाज़ार'

याने व्यापार नहीं आ सकता; ठीक है, इसका तो इजारा मारवाड़ी ने ही लिखा रहा है। मैं इसे स्वीकार नहीं करता। बंगाली 'फेयर बाजार' जानता है, 'क्लीन' व्यापार। शेयर बाजार और 'अनफ़ेयर' रोज़गार के माहिरों ने ही अंग्रेज़ों को बंग-माता की छाती पर सबूट चढ़ाया जब कि 'क्लीन' व्यापारी बंगाली ने विदेशियों को इस देश से निकालने की चेष्टा में अपनी जान तक की बाज़ी लगा दी।

"महानुभावो! मैं मारवाड़ी शब्द से दो अर्थ निकालता हूँ। एक—ग़रीब मारवाड़ी और दूसरा अमीर मारवाड़ी। साथ ही, ग़रीब मारवाड़ी को भार-वाही मात्र मानता हूँ। मज़ा मारें ग़ाज़ी मियाँ, मार खायँ डफाली। ऊलजलूल-कर्मी हैं मालेमस्त, मोटेमल मारवाड़ी—महज़ मुट्ठी भर; पर, उनकी दुर्गन्धि से बिचक कर दुनिया सारे समाज पर नाक मारती है। सत्य संशोधन के लिए मैं अभी जिस मारवाड़ी की निन्दा करूँगा वह अमीर मारवाड़ी है—अर्थ के पीछे अनर्थ करने वाला। ग़रीब मारवाड़ी तो दयनीय है, वैसे ही; जैसे कोई भी दारिद्र-दुर्भाग-दुर्दलित देशवासी। हम जितने ग़रीब हैं, सब ज़मीन के हैं। ये जितने अमीर हैं, सब आसमान के हैं। इनके पावँ पृथ्वी पर कब पड़े? कहें अपने बैंक बैलेंस की क़सम खाकर सेठ राजमल जी जयपुरिया, कि जब उन्होंने 'मारवाड़ी' को कलकत्ते का निर्माता-विधाता-मालिक कहा तब उनकी निगाहों में ग़रीब मारवाड़ी भी था? मैं कहता हूँ आग में ठंडक भले ही हो, नरक में स्वर्ग की कल्पना भी शायद निकल आये, पर, राजमल जी के मारवाड़ी-उत्थान में ग़रीब मारवाड़ी हर्गिज़ नहीं है। वह तो जगतसेठ को मारवाड़ी मानते हैं; जिन्होंने ज़ालिम अंग्रेज़ों के जूते जनता के सीने पर जमाने की जानलेवा जुर्रत की! राजमल जी के शब्द तो सुनिये—"मैं कहता हूँ जगतसेठ न होते, तो अंग्रेज़ न होते, और अंग्रेज़ न होते तो सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता

गांवों का समुच्चय कलकत्ता न होता। कलकत्ता मारवाड़ियों का है साबित करने के लिए इतना ही प्रमाणित करना पर्याप्त होगा, कि जगत्सेठ "मारवाड़ी' थे।"

"यह शब्द हैं राजमल जी के। मैंने नोट कर लिए थे। सज्जनो! मैं दावे से कह सकता हूँ, कि 'जगत्सेठ' या उनके मत या दौलत के भागीदार—'मारवाड़ी हर्गिज़ नहीं थे। क्या किया उन्होंने मारवाड़ या जन साधारण मारवाड़ी के लिए? देश के गले में गुलामी की फांसी लगा उसे जल्लाद विदेशियों के हाथ में पकड़ा कर जगत्सेठ फतेहचन्द, महताब राय या सेठ अमीचन्द ने किसका मुँह चमकाया? मारवाड़ का या मारवाड़ियों का? या अपने मन्द भाग्यों का?"

"सज्जनो! क्यों न कहा जाये, कि कम्पनी-काल के जगत्सेठों और सेठों ने देश और धर्म के ऊपर धन का महत्व स्थापित कर उज्वल आर्य-परम्पराओं का मुँह कोलतार-काला कर डाला? क्यों न समझा जाय, कि जगत्सेठ को आदर्श मान कर आज भी मोटे मारवाड़ी काले बाज़ार को ही सौभाग्य-सीमा मानते हैं? अंग्रेज़ों ने बनियों का वेश बना कर अनेक देशों पर कब्ज़ा कर लिया—उनके इस गुरु-मन्त्र को ग्रहण किया, तो जगत्सेठों की पतित परम्परा के मारवाड़ियों ने। पर, अंग्रेज़ दूसरे के देशों पर अपना मन्त्र सिद्ध करते थे और मालदार मारवाड़ी अपने ही देश की गर्दन के ख़ून से स्वार्थ के कुन्द छुरे को आब देते हैं।"

"मारवाड़ी सेठों द्वारा गत २०० वर्षों में अखिल भारत में कुआँ, मन्दिर, धर्मशाला, गोशाला बनवाने की चर्चा अगर एक मारवाड़ी के मुँह से भरी सभा में न होती, तो अधिक अच्छा होता। अपने शास्त्र तो मौन-दान के महत्वों से भरे पड़े हैं। बाइबिल तक में लिखा है, कि दान असिल वह जिसे दाहिना हाथ दे, तो बायाँ हाथ भी जाने नहीं।

अखिल भारतीय मारवाड़ी दानों का मूल्य बतला कर कलकत्ते पर मारवाड़ी का क़ब्ज़ा कराने की चेष्टा दानों कौड़ी-कौड़ी, सूद और दर सूद के साथ; वसूल करने की कोशिश नहीं तो क्या है ? अंग्रेज़ जनपदों के व्यापार पर अधिकार करने के लिए युद्ध करते थे, मारवाड़ी सेठ दान देते हैं। धर्मशालाएं, गोशालाएं, पाठशालाएं कायम करते हैं। पर, अधिकतर इन सब के पीछे हमारी सभ्यता का सार त्याग नहीं होता, विज्ञापन और व्यापार ही होता है। रूखा व्यापार, निर्मम व्यापार, निर्लज्ज व्यापार। रूखा यों, कि चाँदी के टुकड़ों के लिए देश तक को बेच देने की इच्छा हो। निर्मम यों, कि गोदामों में अन्न और तिजोरियों में रुपये भरे पड़े रहें और भूख तथा दुष्काल से चारों ओर लाखों माई के लाल अकाल ही काल-कवलित होते रहें।

"जयपुरिया जी ने कहा, कि मुसलमान व्यापार करना क्या जाने। क्या जाने बेचारा—बेशक ! उसके मज़हब में ही मुनाफ़ाख़ोरी हराम है। नीरस, निर्मम व्यापारी न होने से किसी की इज़्ज़त कम हो जाती है यह मानने को मैं तैयार नहीं। मुसलमान के पास जब मालोज़र हुये तो उसने ६ करोड़ रुपये लगा कर तख़्त ताऊस तैयार कराया और कई करोड़ रुपये सर्फ़ कर ताज महल बनवाया। एक लाख तोले सोना मुसलमान ने बैठने के आसन पर लगा दिया। इधर व्यापारी मारवाड़ी उतने सोने से लक्ष्मी नारायण की मूर्ति भी न बनवाता। बनवाता भी, तो यह पक्का कर लेने पर, कि एक लाख तोले सोने का देवता ज़रूर एक करोड़ तोले सोना देगा। गंगा और सिन्धु नदियों की रेत से सोना निकालने के फेर में मारवाड़ी भले ही करोड़ रुपये मिट्टी कर देता, पर, तख़्त ताऊस और ताज महल में जो कला और 'कल्चर' है वह हाहाकारी बैंक बैलेन्स में कहाँ ?

'जगत्‌सेठ थे बड़े पुण्यात्मा, बड़े मारवाड़ी, पर, उनका अन्त क्या

हुआ ? पटने के ऐतिहासिक हत्याकाण्ड में कोई कहता है कि मीर कासिम ने जगत्सेठ महताब राय और उनके भाई महाराज स्वरूपचन्द को तीरों से बेध डाला था। क्योंकि, उसे शक था कि वे अन्दर-ही-अन्दर अंग्रेज़ों के पक्षपाती थे। दूसरों की धारणा यह है, कि मुंगेर के क़िले के एक बुर्ज से उन दोनों मालेमस्त भाइयों को गंगा की धारा में फेंक कर ठण्डा कर दिया था—मीर कासिम ने। रहे सेठ अमींचन्द, सो, उनकी दुर्दशा इतिहास के बालक विद्यार्थी से भी छिपी नहीं है। सिराजुद्दौला के संहार के बाद मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने की लूट में हिस्सा देने का वादा करने के बाद भी धूर्त अमींचन्द को जब महाधूर्त लार्ड क्लाइव ने ज़बर्दस्त का ठेंगा दिखा दिया तब जगत्सेठों की वह दुम जड़-मूल से उखड़ कर झड़ गई थी। अमींचन्द सेठ पागल होकर परलोक या जिस लोक में जगह मिली हो गये थे। ईश्वर के दरबार से जिन आदमियों को अपने कर्मों के ऐसे पुरस्कार मिले उनके वंशधरों या फ़ालोवरों का दावा यह कि कलकत्ता उनका है ? कलकत्ता ग़रीब मारवाड़ियों का हो जरूर; वैसे ही, जैसे सारा भारत हरेक भारतवासी का है, पर, मालेमस्त मारवाड़ी का तो कलकत्ता कदापि न हो—हे महाकाली ! हे महाकाली !!

मारवाड़ी जनता से मुनाफा कर ये मारवाड़ी सेठ 'मारवाड़ी' संस्थाएँ बनवाते तो भी उनका 'मारवाड़ी' नाम वसुधैवकुटुम्बकम्-आदर्श वाले इस देश में आदर से न देखा जाता। और सबके दोहन के सोहन हलवे का नाम 'मारवाड़ी-विद्यालय', 'मारवाड़ी छात्रालय', 'मारवाड़ी अस्पताल', 'मारवाड़ी रिलीफ़ सोसायटी' आदि रखना, तो महामन्द मारवाड़ीपन है।

"वह दुर्भाग्य का दिन था जिस दिन स्वार्थ के तराजू पर तौलकर सार्वजनिक हित का सौदा करने पहला बनिया राजनीति के मन्त्रणालय

में घुसा। उसने न्यायालय को शेयर बाज़ार बना दिया, धर्म को रोज़-गार। मैं तो नहीं मानता, कि मालेमस्त मारवाड़ी का कोई भी दान बिना मलीन मतलब के होगा। व्यापार के तार से जनता का अर्क उतार कर कोई कांग्रेस पर अधिकार करना चाहता है, तो कोई सरकार पर। इस देश का वैश्य ऐसा अनुदार कभी नहीं था। पहले के श्रेष्ठी तो नर-श्रेष्ठ देवता थे, साकार। भामाशाह ने राणा प्रताप की मदद उस नज़र से कदापि नहीं की थी जिस नज़र से कांग्रेस की मदद मोटे सेठों ने की या करते हैं। पर--मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ—ऐसे दुष्ट दानों से सेठ लोग कलकत्ता या बंगाल को ख़रीद नहीं सकते। अंग्रेज़राज के साथ ही सेठ-राज का सांप भी मर चुका है। बची हुई है धूसर-लीक मात्र, जो जनमत की महज़ एक फूंक से बिखर जायेगी। कलकत्ता बंगालियों का है—ज़र्रा-ज़र्रा, इंच-इंच। बंगाल--धन-धान्य-शस्य-भरा—'सोनार बंगाल' हमारा है। वन्दे मातरम्!"

"कट्टर बंगाली है।"—किसी मारवाड़ी सेठ ने भाषण के अन्त में राय ज़ाहिर की।

"रुपये के आगे मुझे तो कट्टर कोई नज़र नहीं आया।"—दूसरे सेठ ने कहा।

"के भाव लगाये हैं इसके?"—तीसरे सेठ ने व्यंग से मुस्करा कर दूसरे सेठ से पूछा—"कौड़ी मल जी! भला बतलाओ तो कितने रुपयों में यह बंगाली अपनी राय बदल देगा?"

"आज के सौ में ६० बंगालियों की राय एक अच्छी मरी मच्छी में बदलाई जा सकती है। देखो, सभापति के कहे है?"

"सज्जनो!"—सभापति ने सबको शान्ति रखने का संकेत कर

सुनाया—"मैं समझता हूँ, अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद मारवाड़ी और बंगाली के अलावा कलकत्ते पर अपना हक़ साबित करने वाला अब कोई दूसरा देशवासी न होगा। अतः अब मैं अपनी नाचीज़ राय आपके सामने........।"

"सभापति महोदय!"—जनता में से उठ कर लम्बे, तगड़े, गोरे, गठीले तरुण ने सम्बोधित किया—"क्या आप कुछ वक्त देसवालियों याने उत्तर भारत और बिहारवालों की ओर से बोलने के लिए मुझे देने की कृपा करेंगे? मेरा दावा है कि कलकत्ते पर देसवालियों का हक़ बंगालियों या मारवाड़ियों से तनिक भी कम नहीं है।"

"देसवालियों की ओर से बोलने वाले आप कौन हैं?"—पूछा सभापति ने।

"दो सौ वर्ष पूर्व मेरे पूर्वज बिहार से आकर मिर्ज़ापुर ज़िले में बस गए थे; अतएव मैं बिहारी-उत्तरभारतीय दोनों ही हूँ और उनके हक़ में न्याय दिलवाने का अधिकारी हूँ।"—जनता में से उस तरुण ने कहा।

"तब कृपया आप मंच पर आ जाइये।"—सभापति ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा।

"सभापति महोदय! बंगालियो! और मारवाड़ियो!" मंच पर आकर तरुण ने शुरू किया—"बंगालियो! मारवाड़ियो! यों, कि ये ही दोनों कलकत्ते को अपनी बपौती मानते हैं। कोहनूर हीरा किसका? पूछा लार्ड डलहौज़ी ने महाराजा रणजीत सिंह से। बेशक जो उसकी क़ीमत अदा करने की शक्ति रखता हो। कोहेनूर की क़ीमत क्या? पूछा धूर्तराट अंग्रेज़ ने। पांच जूते। जवाब दिया महाराणा रणजीतसिंह ने। वैसे ही, आज का प्रश्न है, कि कलकत्ता किसका? बेशक उसका

जो उसकी क़ीमत दे सके। कलकत्ते पर अधिकार पाने की क़ीमत है क्या ? बक़ौल महाराज रणजीत सिंह—वही पाँच जूते। मेरा ख़्याल है कि कलकत्ते रूपी कोहेनूर की क़ीमत अंग्रेज़ों ने पांच जूते से अधिक नहीं चुकाई थी। सात समुद्र पार से चढ़ आकर, मुसलमान नवाब और बंगाली ज़मींदार के ऊपर रोब गांठ कर, १६००० रु० में सुतानुती, गोविन्दपुर और कलिकाता नामक गांवों को भारत में अंग्रेज़ी राज का खूंटा गाड़ने के लिए डंगे के बल पर ख़रीद लेना और कलकत्ते को ५ जूतों में मोल लेना बराबर है

"बंगाली मोशाय आज कहते हैं, कि कलकत्ता उनका है। क्यों साहब, कलकत्ता बंगाली का था, तो उसने उसे अंग्रेज़ों के हाथ बेच क्यों दिया था ? कोई कहेगा कि वे गांव नवाब नाज़िम अज़ीमुश्शान के हुक्म से बेचे गए थे; विवश बंगाली करते क्या ? मैं पूछता हूँ अज़ीमुश्शान ने काली माता का मन्दिर भी अगर विधर्मी विदेशियों के हाथ बेच दिया होता, तो क्या आप बंगाली उसे बिक जाने देते ? जब वे गांव बिक रहे थे, तब बंगालियों ने विद्रोह क्यों नहीं किया ? सत्याग्रह क्यों नहीं किया ? उन गांवों का बिक जाना माता का मंदिर—सारे राष्ट्र का—मिट्टी के मोल बिक जाना था। बाद को अंग्रेज़ों से पीड़ित बंगाली बांके बने, विद्रोही बने, बमबाज़ बने; मगर, उस वक्त उन्होंने अगर सत्याग्रह भी कर दिया होता, तो नवाब नाज़िम ऐसा ग़लत काम न करता। मैं बड़े अदब से कहता हूँ, उस वक्त दब कर बंगाली ने सारे भारत को ब्रिटिश जैकबूट के नीचे दबवाने का पिशाच-बाधित श्रीगणेश किया था। कोई कहेगा कि बाद में अंग्रेज़ों से बंगाली लड़ा भी खूब—और सारे देश के लिए—पर. मेरेमते यह वैसा ही है जैसे पहले घर में आग लगा कर फिर कोई विकृत-मस्तिष्क प्राणपण से उसे बुझाने में जुटे। बंगाल ने प्रकाश दिया भारत को वैसे ही, जैसे कोई

पहले तो घर-घर के दीपकों को मूर्खता की फूंक मार कर बुझा दे और फिर अपनी भुजा में कमज़ोरी के चीथड़े लपेट, मशाल बनाकर, रुधिर की आग लेस चारोंओर 'उजरार' फैला दे। घर होने से कलकत्ता बंगाली का नहीं हो सकता, आप देख चुके—घर रखने वाले का घर होता है। ज़र होने से कलकत्ता मारवाड़ी का भी नहीं हो सकता; यह आचार्य खगेन्द्र पाल ने अपने ओजस्वी भाषण में थोड़ी देर पहले पाण्डित्य-पूर्ण युक्तियों से प्रतिपादित कर दिया है। अब हमारा न्याय-पूर्ण दावा है, कि कलकत्ता देसवालियों का है। 'देसवाली' शब्द की छाया में मैं उत्तर प्रदेश और बिहार के भाइयों के साथ उन सभी मेहनतकश लोगों को भी शामिल करता हूँ, जो कलकत्ते के उत्थान में अमीरों से कहीं अधिक श्रमदान देकर भी—धूर्त और संघबद्ध न होने कारण—हमेशा शोषित-वर्ग हीमें ही बने रहते हैं। 'जो जोते उसका खेत' के न्याय से जो जाँगर-तोड़ कर बनाये उसका मकान भी अगर माना जाने लगे, तो, ये सारे महल उन अभावग्रस्तों की चहलपहल से दहल उठेंगे जिन्हें सोनेभर के लिए जगह तक मिलना फिलहाल सहल नहीं। ये सब मकान हमारे बनाए हुए हैं; उनका भाड़ा भी हमीं उगाह सकते हैं; चाहे दरबान के वेश में या पुलिस के। रुपये केवल सेठ या बाबू, महाजन या 'मोशाई' की तिजोरी में जमा होते हैं। और फिर, इसके बाद भी, हमीं हैं कि अपनी जान जोखों में डाल उन तिजोरियों की रक्षा करते हैं, जिनके बल पर सेठ लोग बाज़ार भाव में घातक उलट-पुलट कर हम ग़रीबों की जान जोखों में डाल देते हैं। यू० पी० और बिहार के शत-शत दरबान ऐसे हैं जिनकी सुरक्षा में बाबू और सेठ हज़ारपति से लखपति और-दस लाखपति से करोड़ी बन गये; पर वे रहे दरबान के दरबान। एक कम-ज़ोर मारवाड़ी किसी सेठ का कैशियर या मुनीम बनता है, तो उसके

मन में जल्द-से-जल्द स्वयं सेठ बनने की इच्छा पैदा होती है—अना-यास--जैसे बरसात में केंचुए। और अक्सर वह अपने 'बाबू' या सेठ को ही उलटे छूरे से मूंड कर सेठ बन जाता है। ग़ौर से देखें तो आज के ७२ फ़ी-सदी सेठ कल के मुनीम या दलाल ही निकलेंगे। व्यापारी व्यापारी का गला जिस अनुदारता से बाज़ार में काटता है-मारवाड़ी मारवाड़ी का गला—उस अनुदारता को हम देसवाली लोग 'पाप' कहते हैं—मन-ही-मन अपने को पुण्यात्मा मानते हुए, यह भूल कर, कि उन्हीं सेठों की पाप--कमाई की रक्षा अपने पौरुष या पुण्य से कर कहीं अधिक पाप बढ़ने का अवसर अक्सर हम पुण्यात्मा देसवाली ही सामने लाते हैं।

"कैसा है यह देसवाली! आज के हेतुवादी युग में इस अहेतुक 'बहेतू' की बिसात सदियों से मरने--खपने पर भी बंगाल में बित्ते बरा-बर नहीं। इसी के बूते की बत्ती जला कर जब वित्तवान् सम्पति जोड़ता है तब यह 'सूर सागर' के गीत, रामायण की चौपाइयाँ, कबीर या दादू के पद अपनी स्वर--क्षमता के अनुसार गुनगुनाता, अलापता, गाता है। 'देखि आन की सहज सम्पदा द्वेष--अनल मन जारो' समझ लेने के बाद उसका मन किसी के विराट वैभव से बिल्कुल चंचल नहीं होता और वह एक बीड़ा तम्बाकू या एक बीड़ी मात्र बंडी की जेब में पूंजी के नाम होने पर भी सेठों के लाख-लाख रुपये रोज़ ही गद्दी से बैंक या बैंक से गद्दी ले आता--ले जाता है। तरुणी सेठानियों और अरुणा लड़कियों को ज़री ज़ेवर के साथ कलकत्ते से कानपुर, बम्बई, बीकानेर पहुँचा आता है। ठीक अपनी बहू--बेटियों की तरह। बाबू और सेठ बीबी और सेठानियों की बग़ल में सुख--निंदिया सोते हैं, वह जागता है। उसी की सबल बाहुओं की छाया में बनियें मालपुए खाते हैं और वह रूखे लिट्ट और बेबघारी दाल पर गुज़र करता है। महा-

जन खाते हैं लंगड़े आम; वह चाटता है कोंपर। वह सेठों के लड़कों को कसरत कराता है, लड़कियों को स्कूल पहुँचाता है, वह पढ़ाता है, पूजा और तीर्थ सेठ-सेठानियों को कराता है—कौन? वही देसवाली याने बिहारी, याने यू० पी० वाले। याने वे जो बाबू और सेठों को सवेरे अख़बार और नाश्ता हाज़िर करते हैं, शाम को ठण्डाई और पान। माल आता है जहाज़ में, पर, जेटियों में क्रेन या हाथ चलाकर लादते, उतारते, गोदाम तक पहुँचाते वे ही हैं।

"सज्जनो! ईश्वर न करे कि कभी ऐसा हो; पर, यदि कभी एक मत होकर कलकत्ते के सारे देसवाली अपनी सेवाओं से एक साथ हाथ खींच लें, तो आटे-दाल का भाव खुल जायगा। हाकरों के अभाव में अख़बार नहीं मिलेंगे, ग्वाले या दूधवाले दूध नहीं लायेंगे, मोटेमलों की ड्योढ़ी पर ईमानदार जमादार, दरबानों के अभाव में उचक्के-गुण्डे नज़र आयेंगे। टैक्सी, ट्राम, रिक्शे, प्राईवेट मोटर, पोस्ट, पुलिस, पल्टनें सभी ठप्प! याने 'हाथी हथसार, घोड़े घुड़सार', नज़र आयेंगे।

'मगर, युग की शुष्क स्वार्थपरता तो देखो। समाज के इतने स्वर्गीय सेवकों को बंगाली महाशय अक्सर 'खोट्टा' और 'छातुखोर' कह कर अपना महत्व बढ़ाते हैं। मौक़ा पाते ही इस तरह खांव-खांव कर खाने को दलबद्ध दौड़ते हैं गोया देसवाली भारतवासी ही नहीं—शत्रु-विदेशी हैं। बंगाली देसवाली को जिस नज़र से कलकत्ते या बंगाल में देखता है, उसी नज़र से यू० पी० या बिहार वाले अगर प्रवासी बंगालियों का निरीक्षण शुरू कर दें, तो, परिणाम क्या होगा? बंगाली बंगाल में उसी हिकारत से देसवाली को देखता है जो उसे अंग्रेज़ों से पुरस्कार और विरासत में मिली है।

"ट्राम में एक दिन बंगाली और देसवाली में एक दिन कहासुनी

हो गई। क्योंकि, गाड़ी बंगाली मुहल्ले से गुज़र रही थी इसलिए उस समय आरोहियों में बंगाली ही विशेष थे। प्रायः सबके सब ने एक अकेले को घेर लिया और तब कठहुज्जती बंगाली ने सकपकाये हुए देसवाली को ललकारा—'जहन्नुम घुमाय दूँगा।' इस दर्प से क्रुद्ध बंगाली ने जहन्नुम घुमाने का वचन दिया, गोया वह वहाँ का जागीरदार हो रहा हो। यह भूल कर, कि कलकत्ते में मज़बूत देसवाली जहन्नुम में भी कमज़ोर न होंगे। क्योंकि, वहाँ की आबोहवा कलकत्ते से बदतर तो हो नहीं सकती। सो, जहन्नुम का 'यही नक़्शा है, वले इस क़दर आबाद नहीं!' हम अपना मान कर इन्हें मन में, काशी-वृन्दावन में, जगह दें और ये हमें 'जहन्नुम घुमाय देंगे!' बंगाली की दुर्बल देह पर सर भारी है अक्सर। इसका घमण्ड क्लाइव और कर्ज़न से मिलता है और इसकी सूरत चैतन्य महाप्रभु, परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और तथागत अरविन्द से नहीं मिलती। आज यह ज़रा-सी बात पर देसवाली को जहन्नुम ले जा रहा है, कल देश को ले जायेगा और परसों देवताओं से भरे सारे स्वर्ग को भी।

''बंगाल की वर्तमान बुद्धि की एक बानगी और। महाकवि रवीन्द्रनाथ के ब्रह्मीभूत होने पर एक बंगाली दैनिक ने हेडिंग लगाया—'महान् बंगाली का अवसान'। आप ग़ौर करें, तो उक्त शीर्षक में बंगाली की चालू मनोवृत्ति का दयनीय उदाहरण मिलेगा। महान् बंगाली बड़ा, कि महान् भारतीय? अथवा महा मानव? आसमान को शून्य कहना सही हो, पर महा-मानव को महज़ बंगाली कहना मोह-मात्र है—मन्द! यह अलग रहने की मनोवृत्ति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मन्त्र के साधकों के कुल में कुलीनता कदापि नहीं कहलायेगी। फिर भी मुझे एक देसवाली ने बतलाया बंगाली मारवाड़ी से अधिक स्पष्ट है। भावुक होने से बंगाली भभक कर अपना स्वभाव प्रकट कर देता है; पर, बाज़ार-

भाव को दबानेवाला, रक़म छिपानेवाला, अधेले को अधेली और अधेली को अधेला बनानेवाला अंधेरे कुंए की तरह अस्पष्ट, गम्भीर और परिणाम में घातकघोर होता हैं मालेमस्त मारवाड़ी। काम पड़ने पर वह कुत्ते को कुत्ता जी कहेगा--बिहारी खांड या बाज़ारी रांड की तरह मुंह बना कर--मगर, मतलब का दूध निकलते ही, माता--माता कहता हुआ गऊ को भी बेघास की पेंशन दे कर पिंजरापोल पठा देगा। पहलवान की तरह, हाथी की तरह, अपने गांव से आकर सेठों की सेवा में खपते--खपते उन्हें करोड़पति बनाने में देसवाली जब गल जाता है, तब सेठ साहब उसे जवाब दे देते हैं। कटु नहीं महा--मधुर शब्दों में---'देखो पण्डित! अब तुम इतने बूढ़े हो गए कि तुमसे काम लेना अनुचित मालूम पड़ता है। सो, अब तुम अपने गांव में जाकर बाल--बच्चों में राम राम करते विश्राम करो।' वह जानता है, मजे में कि वृद्ध देसवाली के गांव में आराम विश्राम होते ही नहीं, यदि होते, तो वह कलकत्ता कदापि न आता। कलकत्ते आकर भी आराम--विश्राम उसने सेठ के लिए कमाये--अपने लिए नहीं। यू० पी०, बिहार या ग़रीबों के गांव में आराम--विश्राम होते तो सेठ की सलाह सुन कर बूढ़े देसवाली के पांवतले की मिट्टी न निकली जाती। विश्राम के नाम से ही सिहर कर वह थर्रा न उठता; जैसे सारी जिन्दगी कोल्हू पेल कर अपने खून के तेल से तेली को धनवान् बनाने वाला बैल बुढ़ापे में कसाई को देख कर कांपे, थर्राय! फिर भी, कोई चारा नहीं। मुनाफे के बाज़ार में इन्साफ़ का गुज़ारा नहीं। सेठ जब उधर बड़ा बाज़ार का भाड़े का घर छोड़ कर बालीगंज के बंगले में जाता है--करोड़पति बन कर---तब, अक्सर, उसका ईमानदार दरबान वृद्ध होकर, नौकरी तक खोकर, अपने गांव जाता हैं----जहाँ 'घर में घर न सिवान में डेरा' की हालत लंगड़ी डाकिन की तरह उस की प्रतीक्षा करती होती है---हाहाकारी--स्वर से स्वाहाकारी स्वागत करने

के लिए। उसकी गोद में खेले हुए लौंडे, बाबू बन कर, बाक्स में बहूटी के साथ बैठ कर सुरा-सुर और सुरैया का सुख सिनेमा हाल में लेते हैं तब वह अभागा महाभाग अपने गन्दे, चिरकुट गांव में टूटी खाट पर, टाट पर लेटा हुआ गाता है--'सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ, जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपंच जग जोइ।' उसके मन में ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं, असन्तोष नहीं! उसके मन में अपने अभाग्यके प्रति रोष नहीं!!

"बड़ा बाज़ार का व्यापार-बुद्धि बाबू कहेगा, कि ऐसा आदमी भी कोई आदमी है? मैं कहता हूँ ऐसा आदमी न होता, तो बड़ा बाज़ार के बाबू बड़े बाबू न होते। सीधा देसवाली स्वयं मास्टर जी, जमादार जी, दरबान जी बना रहा और जिसकी चाकरी की वह टुटपुंजिए से छोटा बाबू और बड़ा बाबू बन गया। परिणाम यह कि आज कलकत्ते में चिराग़ लेकर ढूँढे भी शायद ही देसवालियों की बनवाई कोई धर्मशाला, गिनती काबिल विद्यालय, अनाथालय या मन्दिर मिल सके। शायद ही किसी देसवाली की अपनी वैसी अट्टालिका या बिल्डिंगें हों जैसी कि मारवाड़ी या बंगाली या उनकी हैं जिनकी सौभाग्य-लक्ष्मी देसवालियों के खून के तालाब से उत्पन्न रक्त-कमल पर सदासीना है। श्रम का नाम सम्पत्ति है अगर, परिश्रम का नाम सोना, तो—सज्जनो! इन्साफ़ कीजिये, कि कलकत्ते के विकास में बहुत और बहुमुखी परिश्रम किनका है। पल्टन में हम लड़े, पुलीस में हम अड़े, बाज़ार, गली, कूचा, प्लेटफ़ार्म पर—विविध मेहनतकशों के वेश में—सदियों से हम खड़े, बड़े आश्चर्य की बात! श्रम हमने किया—सम्पति तुम्हें मिली! परिश्रम हमने किया—सेठ तुम बने। और आज जब विषमता यों असम हो गयी कि तुम शिखर तो हम खड्ड—तब तुम कहते हो—साधिकार—कि कलकत्ता तुम्हारा है!

"भाषणों के आरम्भ में ही मेरी बहन कुमारी प्रियंवदा जी ने शाश्वत-सत्य सुना दिया था, कि कलकत्ता महाकाली का है--महाकाल का। कलकत्ता जब उन गोरों का न हुआ जिन्होंने इसकी नींव डाली, उठा कर खड़ा किया, बसाया, हंसाया, रुलाया--तो फिर हो चुका बंगालियों या मालेमस्त मारवाड़ियों का। मारवाड़ी मोटा जैसे आज कहता है, कि कलकत्ता उसका है, वैसे ही, गत कल खत्री कह रहे थे और गत परसों अग्रवाल, कि कलकत्ता उन्हीं का है। पर, आज देखो, तो कहां खत्री और कहां अग्रवाल। दम बखुद हैं मक़बरों में हूँ--न--हां कुछ भी नहीं। अब मैदान में हैं मोटे मारवाड़ी। यह मारवाड़ी किस खेत की मूली है? अग्रवाल में से सुघराई, संस्कार और उदारता निकाल दी जाएँ, तो बाक़ी मारवाड़ी रह जाता है। अग्रवाल अगर अंग्रेज़ है, तो मारवाड़ी अमरीकन--व्यापार-विस्तार के लिए 'ब्लैक बाज़ार' रूपी एटम बम तक गिरा बहुजन-संहार को सदाचार समझने वाला। अमरीकन जैसे ईश्वर को महान् मात्र जान कर 'डालर' को सर्वशक्तिमान् मानते हैं; वैसी ही मनोदशा--मन्दिर और मिल से सिनेमा-भवन और स्टूडियो खोलने तक--हमारे मोटे मारवाड़ी मित्रों की हो चली है। अग्रवालों के हाथ से कलकलत्ता कैसे निकला? उन्होंने सन्तुलन खो दिया था--अति लोभ और विलास से। सबल लोभ और प्रबल विलास से ही खत्रियों ने कोहेनूर कलकत्ता को अपने ख़ाली खज़ाने से खोकर सौभाग्यों के सुदिन को अभाग्यों की अमावस की काली रात बना ली थी। उसी राह पर गतिवान आज मज़बूत मारवाड़ी मुझे मालूम पड़ता है। वह अविनीत्त हो गया है, वह मग़रूर हो गया है वह विलासी हो गया है, उसके लोभ की लम्बाई अपार--भांड की पगड़ी, शैतान की आंत, हनुमान् की पूंछ साकार!

"सन्तुलन मोटे मारवाड़ी ने खो दिया है लोभ लोलुप होकर। वह आ गया है खोने की राह पर। मुनाफ़े की मृगमरीचिका भी उसे मुबारिक है। देवता से अधिक, देश से अधिक। वह बिहार में बिहारी, बंगाल में बंगाली, यू० पी० में कानपुरी दिखते हुए भी महज़ मुनाफ़ाकारी है। बंगाल की कौंसिल में मारवाड़ी हो, तो कहेगा—बिहार बंगाल का है, बल्कि यू० पी० भी। वैसे ही, बिहार की कौंसिल में पहुँच कर वह सुनायेगा, कि बंगाल बिहार का है, बल्कि नेपाल भी। सत्य की रक्षा में वह लक्ष्मी को ख़तरे में नहीं डालेगा; भले फाटके में फूंक दे। उसकी बुद्धि को पक्षाघात हो गया है। कलकत्ते का मालिक वह हो भी गया हो कल-बल-छल से—जैसा कि हमारे श्रेष्ठ श्री राजमल जी जयपुरिया ने फ़र्माया—तो दूसरों को इसे परम दुर्भाग्य मान कर दुरुस्त या दूर करना चाहिए।

"बंगाल बंगाली का हो, बिहार बिहारी का; पर, कलकत्ता तो सभी का है और किसी एक का कदापि नहीं है। फिर भी, सपने में भी कलकत्ता यदि बंगाली का हो या मारवाड़ी का, तो सचमुच सबसे पहले इस शहर पर अधिकार देसवाली का होना चाहिए। आप चुप रहिये, तो हम कब बोलते हैं? मगर, अगर आपने जीभ लपलपाई, तो हम भी बढ़ कर पंजा मारे बिना रहने वाले नहीं। कलकत्ता सबका है। सेठों की समझ का स्रोत सूख न गया हो, तो 'सकल भूमि गोपाल की' है। मारवाड़ी का कलकत्ता ही क्यों? अखिल भारत क्यों नहीं? राम अखिल भारत के, कृष्ण अखिल भारत के, शक्ति वही, शिव वही, सरगम वही, ठाट वही, वेद वही, वेदान्त वही, सिद्धि वही, सिद्धांत वही, फिर भी बंगाली, दीगर, मारवाड़ी दीगर, पंजाबी दूसरे, देसवाली, गुजराती, मराठे दूसरे! यह भी कोई बुद्धि है? निर्णय है? जियो और

जीने दो यारो ! सारे अंग जब तक एक साथ हैं तभी तक शक्ति है—सदेह । कट कर अलग होने वाले की सड़ने के अलावा दूसरी गति नहीं । बंगाल की हवा में उन्माद या बेहोशी पुरानी है । मुग़ल बादशाह जिस सरदार को विलास से जर्जर करना चाहते थे अक्सर उसे ही यहां का सूबेदार या नवाब नाज़िम बनाते थे ।"

इसी वक्त सभा में सेठ सीताराम सोमाणी ने सभापति का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया—"मुझे आश्चर्य है कि विद्वान् सभापति इतनी देर से वक्ता महोदय का अनर्गल प्रलाप कैसे सुन रहे हैं !"

"मेरे भाषण का एक-एक शब्द सच है, सेठ साहब !"—देसवाली ने दर्प से सुनाया ।

"सच है, तो आप किसी मारवाड़ी महाजन का नाम बतलाएँ. जो विलासी, समाजद्रोही और घातक लोभी हो । और अगर आप एक भी नाम नहीं बतला सकते, तो मारवाड़ियों के विरुद्ध अपने आरोप वैसे ही वापिस लें जैसे कुसूरवार थूक कर चाटता है ।"—सीताराम सोमाणी ने सतेज कहा ।

"आपका आग्रह ही है तो एक नाम मैं बतलाता हूँ"—देसवाली ने कहा—"सेठ घीसालाल बीकानेरी । ऐसे दर्जनों नाम मैं और भी बतला सकता हूँ और आप स्वयं जानते होंगे, पर, होता क्या है, कि भरी सभा में नाम लेकर आलोचना करने से व्यक्ति चिढ़ कर हठ पकड़ लेता है । इसी से मैंने वैसा नहीं किया था ।"

"घीसालाल जी में कोई बुराई नहीं है, आप झूठ बोलते हैं ।"—भीड़ में से एक मारवाड़ी तरुण ने सुनाया । साथ ही, दूसरे देसवाली तरुण ने उसे उत्तर भी दिया कि—

"माया भँवरलाल, तुम क्यों नहीं घीसालाल जी की गाओगे। मगर, सभी तो तुम्हारी तरह सेठ के नज़दीकी रिश्तेदार या लूट के हिस्सेदार नहीं हैं।"

"घीसालाल बहुत बुरा महाजन है।' —तीसरे ने सुनाया—"लेना हो, तो मुर्दे के मुंह से निकाल ले; देना हो, तो घिसते-घिसते सिक्के को सपाट कर दे। $\frac{3}{13}$ के किसी भी भाड़ैत से पूछने पर पता चल जायगा कि वह किरायेदारों से कैसा कर्कश व्यवहार करता है। उस मकान की कोठरियां देखने से ही पता चल जायगा, कि वह किरायेदारों को आदमी समझता है या पशु। इनके अलावा घीसालाल सेठ और भी जो-जो भ्रष्टाचार करता है वह सारे बड़ा बाज़ार में उजागर है।"

"मारो बदमाश मिथ्यावादी को!"—भँवरलाल ने अपने पास के आदमियों को ललकारा—"इस देसवाली के बच्चे को प्लेटफ़ार्म से नीचे खींच लो!"

"हत्तेरी की! धत्तेरी की!! ले तेरी की!!!"

वह हंगामा बर्पा हुआ, कि कुर्सी और डायस छोड़ कर सभापति महोदय और संयोजक श्री राजमल जी जयपुरिया पीछे के रास्ते से भाग खड़े हुए। टेलीफ़ोन से पुलीस बुलाई गई, तब कहीं जाकर 'मारवाड़ी-भवन' का सारा फ़र्नीचर चूर-चूर होने से बचा। फिर भी, दो टेबल और दर्जनों कुर्सियाँ टूट कर ही रहीं। भला हुआ जो सर किसी का नहीं टूटा। धक्का-मुक्की, घूँसे-थप्पड़ तो बहुतों को लगे।

घीसालाल जी : २

उस मकान के हर आदमी की ख़ास शिकायत यही कि निहायत भयानक सपना किसी न •किसी निवासी को रोज़ ही नज़र आता। 'सपना' से मुराद 'सपने' नहीं। मकान वासियों का सपना एक ही होता। पहलवान-सा गठीला, काले रंग का कोई प्रेत जिसकी देह में अधघुसे अनेक छुरे।—"भागो!"—सपना देखने वाले मकान वासी को प्रेत ललकारता—"इस मकान की नींव में हत्या है, पाप है! यह मकान सेठ घीसालाल का नहीं, मेरा है—हा-हा-हा-हा! भागो!"

उस मकान को आपने ज़रूर देखा होगा। बांगड़ बिल्डिंग से अपर चितपुर रोड पकड़ कर, बड़तल्ले के नाके से, बाएँ मुड़िए। बड़तल्ले में प्रायः डेढ़ हज़ार गज़ जाने पर दाहिनी ओर को एक गली घूमती है, नाम है—सीतामाता स्ट्रीट। उसी में वह तगड़ा तिनमंज़िला मकान है जिसकी चर्चा इस उपन्यास में प्रधान है।

आपने ज़रूर देखा होगा; क्योंकि अभी दो ही साल पहले वह मकान कलकत्ते वालों की आँखों का ख़ौफ़नाक तमाशा बन चुका था। तीसरी मंज़िल से गली में गिर पड़ने के कारण एक हृष्ट-पुष्ट तरुण गौड़ ब्राह्मण की हड्डी-पसली तक चूर-चूर हो गई थी। पुलिस वाले, पेपर वाले और पब्लिक के लिए तीर्थ-स्थल बन गई थी वह गली और वह ख़ौफ़नाक मकान (मृत्यु के) देवता की तरह दर्शनीय! कितनी अफ़वाहें! जितने मुँह उतनी बातें—मकान और उसके मालिक 'साठा-पर-पाठा' सेठ घीसालाल को लेकर!

और स्थानीय अख़बार वालों ने उक्त दुर्घटना को लेकर कितने कालम काले किये थे। कहते हैं—एक पत्र ने सेठ घीसालाल के विपक्ष

में आग उगलना शुरू किया था, तो दूसरे ने उसके पक्ष में पानी बरसाना शुरू कर दिया था। और अख़बारों के आग-पानी दोनों ही का उद्देश्य धनकुबेर सेठ का उलटे उस्तरे से दिव्य-मुंडन ! पक्ष और विपक्ष के पेपरों को जब घीसालाल ने मोटे-मोटे चेक दिये (मफ़त लाल बैंक के) तब कहीं अख़बार-संचालक काग़ज़ी डिक्टेटरों ने जनता का ध्यान सीतामाता स्ट्रीट के उस मकान से हटा, 'माशूक' नामक फ़िल्म की नमकीन नायिका की तरफ़ आकर्षित किया था। पुलिस को जांच-पड़ताल का मौक़ा न दे, उक्त पत्रों ने, पैसे के लोभ में, जनता में भ्रम-भरी भावनाओं को भी भर डाला था। फलतः आज तक पुलिस वाले यह पता न लगा पाये कि उक्त तरुण ब्राह्मण ने आत्महत्या की थी या ग़फ़लत से गिर पड़ा था अथवा किसी ने ऊपर से नीचे फेंक कर उसकी हत्या कर डाली थी। अन्ततोगत्वा साबित यह हुआ था कि तिमंज़िले पर तुलसी ॰ गमले में पूजा का पानी डालते वक्त न जाने कैसे चूक कर वह गली में गिर पड़ा था। पर, जनता को इस निर्णय पर विश्वास नहीं हुआ। सो, उस तरुण की करुण-मृत्यु को लेकर सेठ घीसालाल के बारे में बहत्तर बदगुमानियाँ, सौ संदेह। लोग कहते सुने गये कि ऐयार घीसलाल ने चाँदी के तारों से पुलिस वालों की आँखें या पलकें सी दी थीं। कुछ लोग कहते कि उस तरुण का सेठ की लड़की से बुरा सम्बन्ध था, अतएव वह मार डाला गया। दूसरे सुनाते, कि मरने वाले की नई लुगाई पर घीसालाल की बुरी नज़र थी, अतएव काँटे की तरह वह राह से दूर कर दिया गया।

सीतामाता स्ट्रीट के उस तिन-मंज़िले मकान का नं० ५¾। वह मकान १५० गज़ की लम्बाई और ७५ गज़ की चौड़ाई में विस्तृत बना हुआ है। उसमें नीचे से ऊपर तक राजस्थानी या मारवाड़ी ही भरे हुए हैं। मारवाड़ी अगर नहीं हैं, तो दो दरबान—एक मिर्ज़ापुरी, दूसरा छपरिया

और एक नेपाली खुखुड़ीबाज़ पहरेदार। शेष सबके सब मारवाड़ी। यहाँ तक, कि मकान की गन्दी गली में बसेरा बना कर बसा भंगी परिवार भी।

मकान के निचले खण्ड में कई गोदाम हैं और दरबान-पहरेदारों के रहने की व्यवस्था है। सभी गोदाम सेठ घीसालाल याने मकान मालिक के हैं। तेरह टट्टियों और आठ जलकलों की पंक्ति भी नीचे ही है और मध्य-खण्ड के लोग स्नानादि नीचे ही करते हैं। बिचले खण्ड में टट्टी या नहाने की व्यवस्था नहीं है। बिचले खण्ड में एक या दो कमरों के आवास हैं—कोई पचास, जिनमें बसने वाले किरायेदार निम्न मध्य-वर्ग या निम्न श्रेणी के सभी। मुनीम, महाराज, दलाल और सटोरिए, पर मारवाड़ी सभी–बालबच्चे दार। साथ ही, उनमें से अधिकतर सेठ घीसा-लाल के विविध व्यापारों के कर्मचारी। दो साल पहले तिमंज़िले से गिर कर मरने वाले तरुण ब्राह्मण की कोठरी भी दूसरी ही मंज़िल पर है।

मकान के तीसरे तल्ले पर स्वयं मकान मालिक घीसालाल रहता है। वैसे घीसालाल के एक-से-एक मकान, एक से एक स्थान पर। बड़ा लड़का बालीगंज रहता है –मारबल–मण्डित विस्तृत बंगले में। छोटा लड़का अलीपुर के 'एयर कंडीशन्ड' लेटेस्ट डिज़ाइन की इमारत में। लड़की रहती है चौरंगी की सजी-सजाई आलीशान कोठी में। लेकिन घीसालाल को वही मकान पसंद है, सोनामाता स्ट्रीट वाला प्रेतावास! ९$\frac{3}{3}$ नम्बर के तिमंजिले मकान के तीसरे तल्ले पर मकान मालिक सेठ स्वयं रहता है। ढ़ाई दर्जन कुशादे कमरों में–अक्सर अकेले। सेठ के दोनों लड़के उस मकान में कभी-कदाच ही आते और मालदार पिता से मतलब ऐंठते ही चलते बनते हैं। हाँ, सेठ की विवाहिता पुत्री पार्वती अक्सर आती और पिता के साथ हफ़्तों रहती है।

मकान से गिर कर मरनेवाला वह ब्राह्मण सेठ घीसालाल का रसोइया था। सेठ काम-धन्धे से बाहर जाता तो, अक्सर सवेरे का गया दोपहर और दोपहर का गया शाम को आता। तब तक तरुण महाराज और तरुणी सेठ-कन्या तिनतल्ले की ढाई दर्जन कोठरियों में अकेले ही रहते, सो, बिचले तल्ले की औरतें और रमूजी मर्द यह कहते और वह कहते। पर, पार्वती इन चबाई-चर्चाओं से लापरवाह उस नौजवान गौड़ के साथ मोटर में बैठ कर फ़िल्म देखने जाती–'बरसात', 'माशूक' 'मेरी जान'!

घीसालाल के दामाद भंवरलाल को अपनी पत्नी की आज़ाद आदतें फूटी आँखों भी न सुहातीं। पर, वह लाचार था; घर का ग़रीब होने के कारण वह सेठ के अहसानों से दबा हुआ था। पार्वती लाखों रुपये लेकर भंवरलाल के घर में आई थी। वह मामूली पत्नी नहीं—'लक्ष्मी' थी; भंवर लाल के सौभाग्य की मालकिन। उसके किसी भी आचरण से अप्रसन्न होने की ताक़त जन्मजात दरिद्र भंवरलाल में कहाँ? फिर भी, दोस्तों के तानों से तमक कर एक दिन उसने अपने ससुर से पार्वती की शिकायत को ही,—कि वह बहुत बे-कही और आज़ाद हो गई है। इसकी बदनामी भी है—बहुत।—जब देखो तब' भंवरलाल ने कहा—पार्वती उस महाराज साले के साथ में! सिनेमा घर में सबने देखा; बोटानिकल गार्डेन में सबने देखा; ग्यारह बजे रात सबने देखा महाराज और पार्वती को विक्टोरिया मेमोरियल के मैदान की झिलमिल में। मैं इस महाराज के बच्चे की किसी दिन हत्या कर डालूँगा।

इस शिकायत के तीसरे ही दिन घीसालाल ने महाराज को उसके देश भेज दिया; काफ़ी रुपये देकर, कि वह अपना ब्याह कर के आवे।

और इसी बहाने तरुण महाराज ६-७ महीने कलकत्ते से बाहर रहा। फिर भी, अमीर-पुत्री पार्वती और ग़रीब-पुत्र भंवरलाल में प्रेम न पला। पार्वती से यह छिपा न रहा, कि उसके पति की शिकायत के सबब ही उसके प्रिय को कलकत्ता से बाहर किया गया है। इस पर वह और भी चिढ़ गई और पति-पत्नी और भी अधिक दूर हो गये। भंवरलाल को चिढ़ाने के लिये पार्वती ने एक दिन उसके आगे ही अपने पिता से कहा, कि महाराज को बुलाया जाये, क्योंकि, जब से वह गया है एक दिन भी स्वादिष्ट खाना खाने को नहीं मिला—"तुम नहीं बुलाओगे"—पार्वती ने पिता से कहा—"तो मैं खुद ही जाकर महाराज को ले आऊँगी।"

सो, तरुण गौड़ ब्राह्मण पुनः कलकत्ते आया। इस बार एक ब्राह्मणी नव-विवाहिता के साथ। ब्राह्मण के आते ही पार्वती मारे खुशी के बाग़-बाग़ हो गई। चौरंगी याने पति का निवास-स्थान छोड़ कर वह बाप के घर आ गई—भंवरलाल के लाख समझाने-बुझाने धमकाने पर भी रुकी नहीं।

कहते हैं महाराज का मुँह देख कर पुत्री ने पति को भुला दिया, तो महाराजिन की ज़वानी देख कर पिता ने दामाद की शिकायतें इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा दीं! कहते हैं, पहले भी, दूरदर्शी घीसालाल ने अपने दामाद की सुविधा के लिए कम और नई महाराजिन देखने की जवान अभिलाषा के लिए विशेषतः रुपये-पैसे देकर मारवाड़ भेजा था।

घीसालाल के तीन अवगुण परम प्रसिद्ध सारे कलकत्ते में (१) बहुत कंजूसी (२) बहुत धन और (३) बहुत औरत-बाज़ी। सेठ को खाने का शौक़ नहीं, पहनने का तो और भी नहीं। नशापत्ती के नाम

सिवा बीड़ी पीने के दूसरा शौक़ नहीं। सारे दिन में कलकत्ते जैसे मंहगे शहर में खा-पीकर घीसालाल का निजी ख़र्च २।।-३ रुपयों से अधिक नहीं। रुपये सेठ से भले ऐंठती हैं, तो बुरी औरतें। औरतों में भी वह रूप के पीछे कभी न मरता, न हृदय या दिल की ही दिल्लगी उसका अभिप्रेत। घीसालाल को कोरी जवानी पसन्द, फिर वह मृग-नैनी के पास हो या कानी के, गोरी के या काली के। भरसक वह मुफ़्त में औरत चाहता, नहीं तो. कम-से-कम दामों में। याने शौक़ की चीज़ में भी भाव-ताव करने का स्वभाव उसका। जैसे, जवानी में एकबार किसी वेश्या को एक रात के लिए सौ रुपये तो दिए उसने, पर, पाँच रुपये काट कर। इसलिए कि रात को वेश्या ने खाना भी खाया था।—'यह आप जैसे बड़े आदमी के लिए बड़ी छोटी बात है सेठ जी'—वेश्या ने घीसालाल से असन्तुष्ट होकर कहा था—'खाने ही नहीं, पीने का खर्च भी हमें मिलता है।'' इस पर रियासत से नाक-भौं सिकोड़ते घीसालाल ने कहा था—'मैं रईस नहीं बाबा। मैं तो व्यापारी हूँ। व्यापारी की निगाह हमेशा चार पैसे बचाने पर रहती है; जब कि रईस की आदत उड़ाने की मशहूर है।' जो हो, उस काण्ड के बाद वेश्या ने घीसालाल के यहाँ जाना बन्द कर दिया था। फिर भी, बड़ा बाज़ार की अनेक कुटनियों और दलालों के होते सेठ का बिस्तर एक दिन— या रात—भी ठण्डा नहीं रहा।

मतलब यह कि सौ में ६६ औरतें घीसालाल की निगाहों में बंबैया-बनारसी आमों-सी नजर आतीं—बिलकुल निचोड़ लेने काबिल, सिर से पांव तक आत्मसात करने योग्य। ९$\frac{3}{3}$ नंबर के बिचले खण्ड में तीन चार परिवार ऐसे थे जिनकी स्त्रियों से घीसालाल का बदनाम सम्बन्ध। ग़रीब पतियों को काम दिला कर वह उनकी आँखें पत्नियों की तरफ से बन्द कर देता। कितनों ने तो उसका कुख्यात स्वाभाव सुन कर ही

उसके यहाँ नौकरियाँ की थीं और उसका धन-रस खींच लेने के अभि-प्राय से जोकनियों की तरह अपनी स्त्रियों को उसके अंग से लगा-मारा था, मगर, अन्त में निराश हो अपनी पूंजी या आबरू कौड़ियों में गंवा कर पछताने के सिवा उनके हाथ कुछ भी न लगा। घीसालाल वह गुड़ कदापि नहीं था जिसमें चींटे लगते।

और धनिक किसी को कुछ दे या न दे, पर धन का समाज पर ऐसा कुप्रभाव है कि उसके सात ख़ून माफ़। औरतों के सिलसिले में कई बार घीसालाल का नाम समाज और न्याय के सामने बुरी तरह से आया, पर, हमेशा वह भले बच गया। 'भले बच गया' यों कि न्याय ने उसकी रक्षा की, धर्म ने उसको धारण किया। मारे और धिक्कारे गए उसके बेचारे शिकार !

एकबार बरसात के दिनों में दो हज़ार के गहने देने का वादा कर घीसालाल ने किसी मस्त महाराजिन को सात आठ दिनों तक ९३ में रोक रखा। मगर, जब दाम देने के वक्त आया तब बिलकुल बदल गया और दो हज़ार की जगह दो सौ रुपये देने लगा। महाराजिन के लाख चीख़ने-चिल्लाने पर भी वह पसीजा नहीं। फिर तो उस औरत ने वह हो-हल्ला मचाया कि दोहाई। ९३ के ही लोग नहीं, सारा मुहल्ला एकट्ठा हो गया—'ख़च्चर की तरह यह!' बेइज्जत औरत ने कहा—"सात दिनों तक मेरा खून पीने के बाद अब मुझे दुत्कार रहा है। हाय रे! आ-हा हा हा—मैं कहीं की भी न रही! इसके अंग में कीड़े पड़ें! इसके बाल बच्चे बिगड़े!"

तब तक तो घीसालाला के इशारे पर पुलिस वाला आ ही गया। 'जा बदमाश!' उसने महाराजिन को लाल-पीली आँखें दिखायीं—'जाती है यहाँ से कि ले चलूँ थाने में! जानती है बुरा काम करने वाले

बुरा काम कराने वाली की सजा कम नहीं होती । भाग !—अभागी !"
सुनने में आया कि उस अभागिनी को घीसालाल के कुकर्मों से ऐसा धक्का लगा था कि वह बहुत दिनों तक जीवित न रह सकी । नौवें दिन ही प्राण पंखेरू उड़ गए उसके ! लोग कहने लगे, घीसाल्लाल को पाप लगेगा, प्रायश्चित् करना होगा । महाराजिन के मर जाने के बाद लोकमत से घीसालाल कुछ घबड़ाया भी, मगर, फिर उसके धन की चकाचौंध ने उसकी रक्षा की । अच्छे-अच्छे सनातनियों ने बिना बुलाये ही उसके घर जाकर शास्त्र दिखला कर बतलाया कि किसी भी घोटाले में पाप का $\frac{९८}{१००}$ वां भाग स्त्री का ही होता है । रहं दो, जिनका प्राय-श्चित् पुरुष दान, गोदान, संस्थाओं या अख़बार वालों को दान देकर सहज ही कर सकता है ।

मृत महाराजिन के पाप को दो सौ की गठरी, उसके अस्वीकार करने के सबब, अभी घीसालाल के ही पास थी । उसी में से सौ पंडितों को तथा दूसरा सौ पुलिस को देकर उसने बड़ा बाज़ार की आँखों में अपने मान की मरम्मत कर ली थी और फिर महाराजिन का मामला दब ही गया । न कहीं कुत्ता भूका, न पाहरू जागा ।

असिल में $\frac{३}{१३}$ बिल्डिंग के भाड़ैतों और दरबानों ने ईमानदारी से पुलिस की सहायता की होती, तो तिमंज़िले से कूद कर जान देने वाले तरुण गौड़ ब्राह्मण के बारे में और भी रहस्य खुलते । पर, बात कुछ यों दबा दी गई कि हत्या का सबूत किसी तरह भी मिलना असम्भव हो गया । कहते हैं, इसमें घीसालाल के लाखों रुपये उड़ गये थे । सबसे गहरी गठरी पुलिस वालों के हाथ लगनी स्वाभाविक ही था; मगर, 'पेपर वालों' ने पुलिस वालों से कुछ ही कम पाया होगा । भंगिन की लड़की गुलाब को भी घीसालाल ने हजारों रुपये दिये थे, क्योंकि

वह उस वक्त तिनमंज़िले पर ही थी जहाँ से तरुण ब्राह्मण नीचे गिराया गया था।

'गिराया गया था।' पुलिस का भय दूर हो जाने के बाद भंगिन युवती गुलाबी ने कुँए की सभी औरतों को अलग-अलग बतलाया—'मैं तो वहीं थी न। चार गुण्डों को लेकर सेठ की गैरहाजिरी में दामाद भंवरलाल जब धड़धड़ाता हुआ ऊपर आया उस वक्त जवान महाराज से हाथ मिलाये पार्वती बाई बातें कर रही थी। दोनों दूधमिश्र की तरह मुहब्बत में घुले जा रहे थे। ऊपर की टट्टियाँ साफ़ करते-करते मैं सब कुछ देख रही थी।'

"सब कुछ क्या ?" एक औरत ने विस्तृत रिपोर्ट चाही।

"अरे उन दोनों में कबूतर-कबूतरी-सा सम्बन्ध था"—भंगिन युवती ने बतलाया—"सेठ के घर आने पर ही वे अलग होते; नहीं तो, जब देखो तभी पार्वती बाई उसी से उलझी हुई। असिल में पार्वती ही उस जवान की जान की गाहक बनी। वही अपने पति को छोड़ उसके पीछे पड़ी रहती थी। मगर, जब मौका आया, तो आँखें बदल गयी।"

"क्या मतलब ?"—पूछा एक औरत ने।

"याने उस दिन जब पार्वती का आदमी गुण्डों के साथ घर में घुसा और जो न करना चाहिए सो करने पर आमादा हो गया, वो अमीर की लड़की डर गयी। भाग कर कमरे में घुस कर अंदर से द्वार बंद कर लिए। और बाहर—थोड़ी ही देर पहले वह जिससे प्रेम के मन्सूबे बांध रही थी—उसके उसी परम प्रिय की मिट्टी पलीत होने लगी। भंवरलाल के इशारे पर पार्वती के प्रेमी को पृथ्वी पर पटक कर गुण्डों ने पहले उसके मुंह में कपड़ा ठूँसा, फिर दो दबंग उसके दोनों

मोढ़ों पर दोनों हाथ चाँप कर बैठ गए और दो पैरों को चाँप कर रानों पर—

"क्यों बे हरामज़ादे!"—क्रोध से आग उगलते भंवरलाल ने उसकी छाती पर सबूट सवार होकर पूछा—"तू ब्राह्मण है या चाण्डाल? पराई लुगाई से सम्बंध की सज़ा तुझे मालूम नहीं थी, तो ले भोग—नीच!"

"भंवरलाल ने कस-कस कर कई ठोकरें जवान ब्राह्मण के कलेजे पर लगाईं। मैं समझती हूँ, मर तो वह तभी गया होगा। फिर कील-दार बूटदार लात से उसने उसके बीच मुँह पर ठोकर मारी—इतने ज़ोर से कि उसके सभी दांत टूट गए। पार्वती का पति मारे गुस्से के अपने प्रतिद्वन्द्वी की छाती पर नाचने लगा था। गुण्डों ने कहा—"सेठ, बस करो! साला बेहोश हो गया।"

"मर गया!"—भंवरलाल ने उन्मत हो कर सुनाया—"पांचवीं लात जब मैंने मारी थी तभी मुझे लगा कि हरामज़ादे का क़िस्सा तमाम हो गया। पाँव के नीचे से ऐसी आवाज़ आयी, जैसी तिलचट्टे के दब कर मरने पर आती है। शाकाहारी हूँ मैं—नहीं तो, इसका खून पीने को जी करता है। इसने ख़ून किया है मेरे नौजवान अरमानों का। अब तुम लोग इसको तिमंजिले से नीचे फेंको यों कि हड्डी-पसली तक चूर-चूर हो जाए।"

"इसके बाद गुण्डों ने पार्वती के बेहोश प्रेमी को उठा कर, मेरे देखते-देखते तिमंज़िले से नीचे फेंक दिया और मैं मारे भय के चीख़ कर गुसलखाने के दरवाज़े पर बेहोश हो गिर पड़ी।"

"और यार की जान जाती रही—चली गयी—पर अमीरज़ादी के

मुँह में दही ही जमा रहा ?'' पूछा शुभकरण दलाल की औरत ने ।

''अरे, उसे क्या, एक मारा गया दूसरा ढूँढ लेगी ।''—कहा प्रह-लाद घी वाले की स्त्री ने ।

''पाप के प्रेम में पकड़े जाने पर''—मोहनलाल मुनीम की मां ने सुनाया—''ऊंचे उठाने लायक़ माथा, दिखाने लायक़ मुँह रही कहाँ जाता है ? मर्द के आगे यार की रक्षा पाजी पार्वती करती भी तो कैसे ?''

''मेरी मां !''—शुभकरण दलाल की स्त्री ने खेद प्रकट किया—''एक आदमी की अल्हड़ जान दिनदहाड़े ले ली गयी; एक दूसरी जान याने मरने वाले की औरत भी हमेशा के लिए जीते जी-मार डाली गयी, मगर, हत्यारों का कुछ भी न हुआ ! सारे मुहल्ले और शहर को हत्या का संदेह, पर, सबूत किसी को कुछ भी न मिल सका । यह शहर ईमानदारों के रहने लायक़ अब रहा नहीं ! मैं तो जल्द ही लल्लू के बाप को लेकर देस चली जाना चाहती हूँ । ईश्वर ने मुँह बनाया है, तो चारा जहाँ भी रहेंगे देगा ही !''

''मगर, लल्लू के बाप जी न गये तो ?''—मज़ाक किया भंगिन ने ।

''भाभी उन्हें ज़बरदस्ती ले जाएँगी, गोद में उठा कर ।''—प्रह-लाद घी वाले की पत्नी ने मुस्कराते हुए कहा ।

रही पार्वती के यार मृत ब्रह्मण की पत्नी जिसके बारे में आरम्भ में ही हमने इशारा किया था कि महाराज को रुपये देकर सेठ ने जो शादी करने के लिए भेजा था उसमें दामाद भंवरलाल के सुखों का ख्याल उतना नहीं था जितना जवान महाराजिन के एक-न-एक दिन अर्थ या अनार्थ जाल में फंसने की सम्भावना का ध्यान । मगर, महा-

राजिन राधाबाई ऐसी सस्ती स्त्री न थी कि सहज ही हत्थे चढ़ती। सेठ ने उसे रुपये, कपड़े, सुखी जीवन के लाख प्रलोभन दिये, उसके पति की दुश्चरित्रता की कथाएं गढ़-गढ़ कर सुनाईं, पर राधाबाई के मन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। एक बार तो उसने सेठ से यहाँ तक कह दिया था कि—"मैं आप की बेटी पार्वती बाई से दो साल छोटी हूँ। फिर, मुझे भी आप अपनी बेटी ही क्यों नहीं मानते ?" बात यहाँ, तक बढ़ जाने के बाद घीसालाल ने राधा की आशा छोड़ दी थी; पर उसके पति की मृत्यु या हत्या पच जाने के बाद उसकी नीयत पुनः बदली। महाराज की हत्या के एक महीने बाद की बात है। सेठ रात ९ बजे बाहर से आया। उस समय राधा रसोई घर में थी। कोई आधा घण्टे बाद घीसालाल ने उसको अपने कमरे में बुलाया।

'चौका ठीक करूँ ?'—राधा ने आँखें नीची कर घीसालाल से पूछा।

"नहीं, मुझे दूसरी भूख है। मेरी ओर देखो।"—देखा अठारह-वर्षीया युवती ने पैंसठ साले पशु की ओर। और घीसालाल राधा की नज़रों में साक्षात राक्षस मालूम पड़ा। काला, नाटा, गुट्ठल, पेटल, हब्शियों से होठ-मोटे-मोटे, गाजर के पेंदे-सी भद्दी नाक, जिसमें सांप के-बिल की तरह सांसदार दो छेद, आँखें गोल-गोल और लाल-लाल गिद्ध या उल्लू की तरह। वह कांप उठी मारे भय या घृणा के !

"सेठ, मैं तुम्हारी लड़की हूँ।"

"महाराजिन !"—सेठ ने गम्भीरता से कहा—"बन्द करो बहू-बेटी की बातें ! तम्हारे पति पर मेरे दो हजार रुपये हैं। मैंने रुपये दिये थे तब तुम घेरदार घांघरे और गोटेदार चादर में लिपट कर महाराज के घर आयीं थीं। अब महाराज नहीं रहा, तो रुपये कौन भरेगा सिवा तुम्हारे ?"

"बाप जी !"—राधा रोने लगी—"मेरे पास इतने रुपये कहां ?"

"इतने ही नहीं";—सेठ ने भयानक भाव से सुनाया—"आठ महीने से महाराज ने कमरों का भाड़ा भी नहीं दिया था। देखो, महाराजिन ! कल ही अगर तुमने सारा भाड़ा और दो हज़ार दूसरे न दिए, तो मैं तुम्हें घर से निकाल दूँगा और अपने रुपयों के लिये पुलिस में दे दूँगा !"

"अरे बाप जी !"—गिड़गिड़ाई मूर्ख नारी—"मेरी इज़्ज़त बचाइये ! मैं सारी ज़िन्दगी खाना बना, बासन घस कर, आपका क़र्ज़ भर दूँगी।"

"इज़्ज़त मैं क्या बचाऊँगा"—सेठ ने धूर्त-भय दिखलाया—"इज़्ज़त तुम्हारी कल पुलिस वाले संभालेंगे। हवालात की एक ही रात में तुम-जैसी की आंखों के सामने सारे का सारा थाना उतर जाएगा—थाना।"

"मुझे बचाइये ! मुझे बचाइये।"—कह कर राधा सेठ के क़दमों से लिपट गई।

पांव छुड़ाते हुए घीसालाल ने पहले तो राधा के दोनों गाल अपनी कठोर और रूखी अंगुलियों से 'दर' दिए; फिर उसके कन्धों के नीचे हाथ लगा उसने उसको ऊपर उठाया—"मेरी बात मानो, तो दो-ही महीने में सारा क़र्ज़ माफ़ कर मैं तुम्हें तुम्हारे बाप के घर भेज दूँगा। मंजूर हो, तो—खाना मैं बाद में खाऊँगा—नौकरों को छुट्टी देकर तुम पहले मेरे पास आओ।"

चुपचाप बाहर जाकर राधा ने सीता नौकरानी और कल्लू ग्वाले से कहा कि वे जायँ, रोटी बनावें—खायं, सेठ अभी देर में भोजन लेंगे।

नौकरों को विदा कर जब राधा सेठ के कमरे में पुनः आई, तो उसे देखते ही सेठ ने कहा—"दरवाज़ा बन्द करती आओ।"

दूसरे दिन सवेरे जब राधा अपने इस्तेमाल के लिए पानी भरने

निचले खण्ड में गई तब दूसरेमाले की दूसरी औरतों ने उस पर सवालों की झड़ी-सी लगा दी।

"अरी बहन"—प्रहलाद घी वाले की पत्नी ने पूछा—"एक ही-रात में तुम इतनी बदल कैसे गईं! आंखें धँस गईं, नाक बह रही है और चाल तक में कमज़ोरी नज़र आ रही है। कल शायद बहुत देर बाद तुम ऊपर से नीचे आई थीं?"

"हां, कल सेठ ने देर से खाना लिया था।"—राधा ने सकुचते-लजाते बतलाया।

"नौकरी है, लाचारी है," शुभकरण दलाल की बीबी ने सुनाया—"नहीं तो, राधा-जैसी जवान जनाने को दूसरे के घर में इतनी रात नहीं रहना चाहिए।"

"यह घीसालाल आदमी नहीं, राक्षस है।"—मोहनलाल मुनीम की वयस्क पत्नी ने राधा की ओर देख कर संदेह से कहा—"महाराजिनों को बहुत सताता है। न जाने कब यह नीमतल्ला जायगा। इसके फेर में कई महाराजिनें जान से हाथ धो चुकी हैं। एक ही रात में ज़रा इस राधे का चेहरा तो देखो! बिलकुल बुड्ढी मालूम पड़ती है!"

"सचमुच—सेठ औरतों का तो काल है!"—जोधा पापड़वाले की पत्नी ने कहा।

"अरी बहन!" शुभकरण दलालवाली ने कहा—"पाला नहीं पड़ा है किसी पानीदार औरत से। पड़ता तो, सारी बदमाशी घुस जाती। कभी पड़ेगा, तो मूं-जले को मालूम पड़ जाएगा।"

"मगर"— प्रहलादघी वाले की स्त्री ने खेद और रोष से कहा—"इस शहर के मर्द कैसे नामर्द हैं जो ऐसे घर-घालक, घातकी-पातकी

को अपने बीच पनपने देते हैं। ये लोग अनीति और अधर्म का नाटक नीति और धर्म के नारे लगाते हुए, सारी जिंदगी देखते हैं।"

"औरतों की रक्षा मर्द नहीं कर सकते"—मोहन मुनीमवाली प्रौढ़ा ने सुनाया—"अक्सर मेरे मन में आता है, कि एक दिन राह में पकड़ कर इस स्त्री-भक्षी को इतनी चप्पलें मारूँ, कि दुष्ट की गाजर की तरह नाक टमाटर की तरह लाल हो जाय। हमें अपनी रक्षा का उद्योग स्वयं करना होगा!"

"ऐसा ही हम कर सकतीं"—शुभ करण दलाल की स्त्री ने सुनाया—"तो आज स्त्री-जाती की यह दुर्गति न होती; मामूली से मामूली मर्द भी हमें अपनी सनकों की अंगुलियों पर नचा न सकता।"

औरतों की उक्त बातें सुन कर अभागिनी राधा के पाँव जैसे ज़मीन में गड़ गये। हाथ में बालटी लिए जहां-की-तहां वह मूर्तिवत् खड़ी-की-खड़ी रही। उसके मस्तिष्क में सौ-सौ बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा परिव्याप्त थी।

"अरे!"—प्रहलाद घीवाले की स्त्री ने राधा से कहा—"तुम तो जहां-की-तहां खड़ी ही हो! क्या सोच रही हो बहन? पानी नहीं भरोगी? तुम्हारा मुँह इतना सुर्ख़ क्यों है?"—उसने बढ़ कर राधा का माथा छूया—"मेरी मां!! माथा तो तवे-सा धिक रहा है! तुम्हें बुख़ार है। जाओ; सो जाओ! बालटी मुझे दो, पानी मैं लिए आती हूँ।"

राजमल जी जयपुरिया : ३

लेक रोड पर राजमल जयपुरिया का बंगला सारे कलकत्ते ही नहीं, अखिल भारत में मशहूर । वहीं पर उस रात सुधारक मारवाड़ी तरुणों की एक सभा थी । मगर, सभा की कार्यवाही से पहले, सुधारक मारवाड़ी राजमल का कुछ परिचय देना ज़रूरी है । राजमल की उम्र साठ और सत्तर के बीच, रंग सांवला, चेहरा सुडौल—देखते ही किसी भी शहर का नागरिक नं० १ बनने योग्य । चेहरा अगर हृदय का नक्शा है, तो उस नक्शे की जितनी स्पष्ट-रेखाएँ राजमल के रूप में थीं उतनी शायद ही किसी में हों । राजमल खद्दरधारी, शाकाहारी, प्रसिद्ध सदाचारी और जनहितकारी माना जाता था । प्रशंसक उसको अजातशत्रु कहकर चापलूसी करते थे । अंग्रेज़ों के ज़माने में गवर्नमेण्ट भी उससे खुश, गान्धी भी । गान्धी-दल वाले समझते कि राजमल ही के सबब गवर्नमेण्ट का सही रुख जानना मुमकिन है । वैसे ही, गवर्नमेण्ट समझती कि कांग्रेस-नब्ज़ का सही जानकार है, तो राजमल । 'सूई के छेद में ऊँट घुस जाय, पर, धनिक स्वर्ग के फाटक में नहीं घुस सकता' बाइबिल की इस मान्यता को राष्ट्रीय महासभा के गेट में प्रविष्ट होकर और पूज्य नेताओं के आशीर्वाद संग्रह कर राजमल जयपुरिया ने बिल्कुल ग़लत साबित कर दिखाया था । एकबार कांग्रेस की विषय-निर्धारिणी की बैठक के पूर्व उत्तर प्रदेश—तब यू० पी—के कई सदस्य राजमल से मधुर मज़ाक करते हुए सुने गये थे कि—"सेठ जी ने धन के साथ धर्म का भी संग्रह कर अपना चरित्र तो आदर्श बना लिया, मगर, बेचारी बाइबिल का घोर अपमान हुआ । दृष्टान्त ग़लत साबित हो गया । आप-जैसे मारवाड़ी धनिक, अकेले ही नहीं, ऊँट पर चढ़ कर स्वर्ग के फाटक में घुस सकते हैं ।"

"असिल में ऊंट मारवाड़ का परम प्रिय मित्र"—दूसरे उत्तर प्रदेशी नेता ने चुटकी ली—"व्यर्थ ही बाइबिल ने उसकी चर्चा की, जिसे चैलेंज मानकर राजमल जी ने ग़लत साबित कर दिया।"

"हें हें हें हें !"—मित्रों की चुटकी को चूरन की तरह चखते राजमल ने कहा—"सब आप लोगों का आशीर्वाद है; नहीं तो, मैं किस योग्य हूँ।"

गर्ज़ कि राजमल जयपुरिया की गाड़ी शहर कांग्रेस कमेटी में भी, शेयर बाज़ार में भी। उसके इस चमत्कार से कौए मारवाड़ी जलते इस लिये कि उन्हीं-जैसा होकर भी वह बगुलवर्गी कैसे माना जाता है। तरुणों ने उसे अपना आदर्श इसलिए माना कि सूद, भाड़ा, दलाली, मोटर, इमारत और चैकबुक रखने पर भी वह त्यागी और देश भक्त, सज्जन और महाजन माना जाता था। वह गान्धी जी के सामने सत्याग्रही—शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र की चर्चा करता और पटेल के सामने चाणक्य, मेचिविली, बिस्मार्क की बातें। सारे देश के अनेक बड़े नेता उसके यहाँ मेहमान हो चन्दों की चकाचौंध में उसके चतुर चुल्लू से पानी पी लेते थे। बाहर से किसी संस्था या सत्कार्य के लिए चन्दे प्राप्त करने को आनेवाले बिना राजमल जयपुरिया की सहायता के सफलता की आशा कर ही नहीं सकते थे। पतंग के साथ पुछल्ले की तरह कांग्रेस के प्रभाव के साथ राजमल जयपुरिया का बड़ा बाज़ार भाव भी बढ़ता-चढ़ता गया। बाज़ार के बड़े-बड़े व्यापारी उसको असन्तुष्ट करने से डरने गे। राजमल टेलीफ़ोन से बोल कर जिस सेठ से—चाहे जितनी रक़म—चाहे जिसे, तत्क्षण दिला सकता था। सनातनी या पुराने मत के सेठ लोग राजमल के सुधारक मत—विधवा-विवाह, मृत-भोज-निवारण, कन्या-शिक्षण आदि से असहमत होते हुए भी उसका आदर करते, बात

मानते, इसलिए कि उसकी बड़ी पहुँच, बड़ा प्रभाव, बड़ी दूर-दूर तक।

पैसा होने से ही अगर आदमी बद हो जता है, तब तो दूसरी बात; वैसे, सच तो यह है कि राजमल जयपुरिया ऊंचे दर्जे का चरित्रवान्, बात का धनी, यथाशक्ति गुण-ग्राहक, गुणियों का सत्कार करने वाला, विनम्र, दयालु अर्थात् आर्य पुरुष था। घीसालाल जितना ही विकृत, राजमल उतना ही सुकृत। असिल में घीसालाल को लेकर सारे बड़ा बाज़ार में आमतौर पर मारवाड़ी समाज में ख़ास तौरपर जितने मुंह उतनी ही बातें हो रही थीं! उसी सिलसिले में सावधान सोच-विचार के लिए 'सुधारक मारवाड़ी-मंडल' के मुस्तैद और चुस्त तरुण अध्यक्ष श्री राजमल जी जयपुरिया के लेक रोडस्थ बंगले में उस रात समुपस्थित थे।

'सभी मारवाड़ी घीसालाल जी के समान नहीं। बल्कि, सौ में पांच भी नहीं। मगर, एक बद सारे कुनबे को बदनाम कर डालता है।"—रामभगवान बिन्नानी बी० ए०, साहित्यरत्न ने कहा।

"मारवाड़ी शब्द का प्रयोग जब कोई घृणास्पद रूप से करता है"—रामअवतार गोटेवाले ने कहा—"तब मेरी आँखों में ख़ून उतर आता है।"

"यही मैं भी कह रहा था"—रामभगवान बिन्नानी ने पुनः बोलना आरम्भ किया—"एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर डालती है। और जब अपना सोना ही खोटा हो, तो, पारखियों को कोसे कोई क्यों कर? क्या कोई कलेजे पर हाथ रख कर कह सकता है कि घीसालाल जी बिल्कुल दूध के धोये हुए हैं?"

"ऐसे समाज-कलंकी को गोली मार देना चाहिए।"—रामनाथ रंगवाले ने सावेश कहा।

"कितनों को गोली मारियेगा रामनाथ जी ?"—मुस्करा कर राजमल जयपुरिया ने पूछा—"धनिक समाज में सावधानी से देखियेगा, तो, घीसालाल जी की तरह और भी मिलेंगे—अनेक ! कितनों की हत्या कीजियेगा ?"

"रामनाथ जी आज कल मार्क्स, लेनिन और स्टालिन के सिद्धांतों का घनघोर अध्ययन कर रहे हैं; सो, बिना विनाश के प्रकाश या सुधार उनकी निगाहों में आये तो कहाँ से ?"

"सही सुधार आत्म--परिवर्तन से ही सम्भव है—प्रेम और अहिंसा से --जैसा कि पूज्य बापू जी ने हमें अच्छी तरह से समझाया है । हिंसा से दुष्ट भले ही मर जायँ लेकिन दुष्टता ज्यों--की-त्यों रह जाती है । असिल में दुष्टता का दमन, शमन या मार्जन अर्थात् सुधार बहुत जरूरी है । घीसालाल जी में खोजने से कुछ गुण भी मिल सकते हैं । जब कि सौ में साढ़े निन्यानवे आदमी पैसे-पैसे को तरसते हैं तब घीसालाल जी के हाथ से करोड़ों रुपये इधर-से-उधर होते हैं । एक फटा दुपट्टा लेकर मारवाड़ से कलकत्ते आकर घीसालाल जी के दादा बजरंग लाल ने पाट और फाटके में करोड़ रुपये कलदार कमाये थे । घीसालाल जी के पिता श्री करोड़ीमल ने अपने बाप की सम्पत्ति बढ़ाई नहीं, तो गंवाई भी नहीं; मगर, घीसालाल जी ने तो उसे बढ़ा कर चौगुनी पंचगुनी कर दी । यह साधारण काम नहीं, एक तरह का योग है योग !"

"तब तो घीसालाल जी का अभिनन्दन होना चाहिए !"—राम भगवान बिन्नानी ने ताने से पूछा—"धन का सम्बंध तो हृदय से ही है । मेरा मतलब, धन-संग्रह कंजूस ही कर सकता है । तो, क्या कंजूसी 'योग' हो जायगी ? फिर तो, सभी लोग सिर मुंड़ा कर, कान फुंका

लें समाज कलंकी से ? क्या राय है आपकी ? अन्यायी, अत्याचारी को बिना दण्डित किए छोड़ना अहिंसा है क्या ? मैं नहीं मानता, और मानता हूँ कि घीसालाल जैसे रोग' का इलाज होना ही चाहिए अगर हमारा आदर्श 'मारवाड़ी' शब्द के गौरव की रक्षा है।"

"वह सलाह सुनने को तैयार नहीं"—राजमल ने कहा—"घीसा-लाल जी का कहना यह कि उनकी सारी बदनामियाँ मनगढ़न्त और बेबुनियाद हैं। क्योंकि वह अपना धन लुटा क्यों नहीं देते, अतएव दूसरों का घर फूंक कर अपनी सिगरेट सुलगानेवाले बदनाम करते हैं। विधान से पूछिए तो बात सही भी है। आज तक एक भी इल्ज़ाम उन पर साबित नहीं हुआ। न तो हत्या का और न अपहरण का —।"

"और आप घीसालाल जी के कहे को वेद-वाक्य मानते हैं ?" पूछा रामनाथ रंगवाले ने—"वह धन के प्रभाव से पुलिस और पार्टियों को चौंधिया कर साफ़ बच जाते हैं। मगर, यह बात तो बड़ाबाज़ार में सैंकड़ों आदमी कहते हैं कि घीसालालजी ने हत्या या हत्यायें की हैं अथवा उनके कारण हत्या या हत्यायें हुई हैं।"

"हो सकता है"—राजमल ने कहा—"लेकिन प्रमाणाभाव में कोई किसी पर कैसे दोष लगा सकता है ? कठिनाई यह है। नहीं तो, घीसा-लाल जी का 'ब्रीफ़ होल्डर' या प्लीडर मैं नहीं।"

"मेरी पत्नी को $१\frac{३}{३}$ में रहनेवाली एक महाराजिन ने बतलाया था, कि उस मकान के निचले तले में कोई जगह ऐसी है जिसका पता केवल घीसालाल जी को है। और उस जगह में बड़े-बड़े रहस्य छिपे पड़े हैं। महाराजिन के शब्दों में उस घर में प्रेत और प्रेतिनियां रहती हैं।"

"झूठी बात ?"—राजमल ने कहा—"मैं प्रेत-पिशाच में विश्वास

नहीं करता। प्रमाण में मेरी आस्था है। जब तक प्रमाण नहीं तब तक किसी भले आदमी को छेड़ कर बुरा कहना शिष्टाचार के विरूद्ध है।"

इसी समय नौकर ने आकर राजमल को सूचना दी कि पुलीस इन्सपेक्टर गांगुली बाहर खड़ा है और उससे मिलना चाहता है।

"उसे बाहर ही बैठाओ"—राजमल ने कहा—"मैं आता हूँ।"

"यहीं क्यों नहीं बुला लेते"—रामनाथ रंगवाले ने कहा—"गांगुली बाबू नेक-दिल पुलिस अधिकारी हैं। इनके पिता जितने ही कठोर और खाऊ थे; गांगुली बाबू उतने ही कोमल और बेलौस पुलिस अधिकारी हैं।"

"सुनो तो!"—नौकर को टेर कर राजमल ने कहा—"उन्हें यहीं ले आओ!"

आते ही गांगुली ने सबको नमस्कार किया। वह सादे ड्रेस या भद्र नागरिकों की पोशाक पहने हुए था।—"आइये गांगुली बाबू! आइये, पधारिये! विराजिये!" राजमल के साथ ही प्रायः सभी ने एक स्वर से गांगुली का स्वागत किया!

"ओ हो! मेरे बड़े भाग्य!"—गांगुली ने कहा—"एक साथ ही इतने मित्रों के दर्शन सुलभ होगए। जयपुरिया जी का घर एक तीर्थ है जहाँ हमेशा ही सत्कर्मियों की भीड़ लगी रहती है।

"कहिये,"—हाथ जोड़ कर, सविनय मुस्करा कर, राजमल ने कहा—"क्या हुक्म है?"

"पुलिस अच्छे जन-सेवक का 'फ़ालोअर' है 'लीडर' नहीं, सेठ जी! मैं आज्ञा देने नहीं, लेने आया हूँ। आपने कई बार मुझसे कहा था कि मारवाड़ी समाज के किसी सदस्य के विरुद्ध निर्णयात्मक

क़दम उठाने के पूर्व आपके कान में बात डाल दी जाय तो बेहतर—"

"क्या बात है ? ख़ैरियत तो है ?"—राजमल ने सकौतूहल पूछा ।

"एक विख्यात मारवाड़ी के विरुद्ध मेरे पास ऐसे प्रमाण हैं जिनके आधार पर कार्यवाही करूँ, तो, आपके समाज में हंगामा खड़ा हो जायगा ।"

"क्या बात है ? ज़रा साफ़ कीजिये ।"—राजमल की उत्सुकता बढ़ी । उन्होंने एकत्र तरुणों की तरफ़ देख कर गांगुली से कहा—"हम कहीं और प्राइवेट में बातें करें, तो ठीक होगा—क्यों ?"

"ऐसी कोई बात नहीं ।"—गांगुली ने सुनाया—"यहाँ सभी मित्र समाज-सेवी और समझदार हैं । एक से पांच का फ़ैसला अधिक आदरणीय माना जाता है । मैं उस बड़े मारवाड़ी और उसके मकान का पता-ठिकाना छिपा कर उसके विरुद्ध आरोपों की लिस्ट, नज़रसानी के लिए, आप लोगों के आगे पेश करता हूँ । आप लोग पहले पूरी कथा सुनें ।"

और गांगुली ने चश्मा उतार, साफ़ कर, पुनः आंखों पर चढ़ा कर, सुगन्धित सुंघनी से नथुने भर कर कहना शुरू किया—"आप लोगों को अच्छी तरह मालूम होगा, मेरे पूज्य पिता श्री गंगाधर गांगुली लाल बाज़ार पुलिस हेड क्वार्टर के विख्यात या कुख्यात अधिकारी थे । मरते वक्त वह असिस्टेंट पुलिस कमिश्नर के पद पर थे । उनका क्षेत्र उत्तरी कलकत्ता, ख़ास कर बड़ा बाज़ार था । गुण्डे उनसे कांपते थे । सेठों की चांदी उनके रोष की आंच से अनायास ही गल कर पिघलने लगती थी । तीन लाख की सम्पत्ति और बैंक बैलेन्स छोड़ कर पिताजी स्वर्गवासी हुए थे । इसी एक तथ्य से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि

बाज़ार से कट कर कितनी चाँदी उनकी तिजोरी में जुटती थी। फिर भी, अन्तकाल में सम्पति को महत्व न दे, उन्होंने चमड़े के एक बैग को अधिक मूल्यवान् बतलाया था—"तुम्हें जब, जितने रुपयों की ज़रूरत होगी, इस बैग में बन्द काग़ज़ात से उसी वक्त मिल जायेंगे। सम्पत्ति जाय तो जाने देना, मगर, इन काग़ज़ों की रक्षा जी-जान से करना।"

"मगर, मैंने"—गांगुली ने कथानक आगे बढ़ाया—"उस थैले को आज से पहले कभी खोला ही नहीं था। आज भी खोलना पड़ा इसलिये, कि भगिनी के ब्याह के लिए रुपये चाहिए। बैग में रुपये होंगे या ऐसा कोई जादू होगा जिससे ज़रूरी रुपये तुरंत मिल जायेंगे, ऐसी आशा मुझे सपने में भी न थी। असिल में श्रीमती जी के यह कहने पर कि बड़ों की बातें झूठ नहीं होतीं, इस बैग में ज़रूर कोई न कोई कलदार-कलन-कमाल होगा—साहिबान! बैग खोल कर उसके काग़ज़ों की मैंने जांच की और मेरी हैरत का अन्दाज़ा आप नहीं लगा सकते, क्योंकि, मैंने उस बैग में धन कमाने के कई दर्जन नुस्खे सचमुच पाये!"

"धन कमाने के नुस्ख़े?"—आश्चर्य से आँखें फाड़, मुँह में पानी भर कर रामभगवान् बिन्नानी ने पूछा।

"नुस्खे कैसे-भाया?"—देवराज दुग्गड़ बी० ए० ने पूछा—"क्या धन कमाने के फ़ार्मूले थे?"

"आपका क़िस्सा तो महान् मनोरंजक मालूम पड़ता है।"—राजमल ने भी नुस्ख़ा जानने की उत्सुकता दिखाई।

"देखिये,"—गांगुली ने कहा—"आप सभी की आँखों में धन कमाने की चर्चा से एक तरह की 'लाइट,' ज्योति आ गई है! सूर्यमणि सूर्य को देखकर द्रवित होती है, लेकिन मारवाड़ी मित्र धन के नाम

मात्र से चमक उठते हैं ! नुस्ख़ा सुनने को सभी आतुर, पर, क़ीमत कोई नहीं देना चाहता ।"

"पहले पता भी तो चले, कि नुस्ख़ा है क्या ?"—रामनाथ रंग-वाले के कहा—"क़ीमत माल या कमाल के अनुसार ही तो लगती है ? नुस्ख़ा क्या है, पहले बतलाइये ? विश्वास रखिए, क़ीमत चुका कर ही फ़ार्मूला काम में लाया जायगा—फोकट नहीं ।"

"गांगुली बाबू"—देवराज दुग्गड़ ने कहा—"ऐसे किसी एक को फ़ार्मूला न बता उसका सीक्रेट नीलाम कर दीजिए । जिसमें बिना पक्ष-पात के सबको चांस मिले । बिना काग़ज़ देखे ही मेरी पहली बोली लिख लीजिए—२०० रुपये—देवराज दुग्गड़ ।"

"छिः !"—राजमल जयपुरिया ने कहा—"दुग्गड़ जी ! आपने इनके पिताजी को देखा नहीं था इसीलिए इतनी छोटी रक़म से बोली शुरू की है । गंगाधर जी गम्भीर, दूरदर्शी, कमाऊ याने सफल पुलिस अधिकारी थे । उनके सीक्रेट पेपरों की क़ीमत दो हज़ार तो मैं ही दे सकता हूँ ।"

"मगर, पहले आप सम्पत्ति का स्वरूप या 'नेचर' तो जान लें"—गांगुली ने बतलाया—"उस बैग के काग़ज़ात में पिता जी ने बड़ा बाज़ार के दो दर्जन बड़े-बड़े धनपतियों की वह पोलें लिखी हैं, जो अगर प्रमाणित हो जायें, तो सम्बन्धि धनिकों की दीनोदुनिया दोनों ही ख़त्म हो जायें । उक्त सभी धनिकों के पेट में हत्या, व्यभिचार, ४२०, और डाके पचे पड़े हुए हैं । ग़र्ज़ कि बड़ा बाज़ार के अनेक प्रगति-शील और सुधारक नवयुवकों के बाप-दादों की कहानियां इतनी काली हैं कि उनके आगे कोयले का भी मुँह देखो तो धुआँ !"

गांगुली की बातों से एक बार वहां जितने मारवाड़ी बैठे थे सबके

चेहरे उतर-से गए। भय की हल्की स्याही सभी के चेहरे पर। तेज़ पुलिस गांगुली ने सबके चेहरे का भाव ताड़ा भी !

"मेरे ख़ान्दान के जयपुरिये कभी इतने बड़े धनिक थे ही नहीं, कि मैं डरूँ और आपसे पूछूँ, कि क्या मेरे ख़ानदान की चर्चा भी गंगाधर बाबू के काग़ज़ों में है ?"—जयपुरिया ने सुनाया।

"हम लोग, वैसे तो, धनी हैं"—राम भगवान बिन्नानी ने कहा—"मगर, मैं दावे से कह सकता हूँ, कि मेरे ख़ानदान के किसी भी बिन्नानी ने वैसे कुकर्मों से कौड़ी भी नहीं कमाई है। मुझे पूरा विश्वास है, कि मेरे ख़ानदान की चर्चा आपके पिताश्री के काग़ज़ों में हर्गिज़ न होगी।"

"धन का मक्खन हमेशा टेढ़ी अंगुली से निकलता है"—रामनाथ रंगवाले ने कहा—"सो, मेरे या किसी के ख़ानदानवाले ने डाका, हत्या, ४२० से अगर कमाई की हो, तो अस्वाभाविक इसमें क्या है ? सिवा इसके कि क़ानून ने उसे उसी वक़्त दण्डित क्यों नहीं किया ? दादा या बाप के पापों का प्रायश्चित पोते या पुत्र से कराना मुझे तो उचित नहीं मालूम पड़ता।"

"हम कहते हैं गांगुली बाबू से यों बहस करना ठीक नहीं—ऐसे नेकदिल अफ़सर को प्रसन्न रखना ही हम सबका कर्तव्य है। सो, गांगुली बाबू, कितने रुपये का प्रबंध होने से बड़े गांगुली बाबू के मारवाड़ी-समाज-विषयक काग़ज़ आप हमें देंगे ?"

"लाख रुपये में भी नहीं"—तनिक तीव्रता से गांगुली बोला—"मेरे पिताजी चाहे जैसे पुलिस अधिकारी रहे हों, पर, मैं वैसा नहीं हूँ। रिश्वत से मुझे चिढ़ है। मैं पुलिस की ड्यूटी सेवा और जनता का श्रद्धा-सम्पादन मानता हूँ। म्यूनिसिपेलिटी वाले नाममात्र के 'नगर पिता' होते हैं—अधिकार रहित। असिल नगर-पिता पुलिस का अदना से

अदना सिपाही है, जो रात-को-रात और दिन-को-दिन न समझ धूप, वात, वर्षा में जनता के लिए तपता और खपता है। चौरस्ते के बीच में गोल बक्से पर खड़ा आवागमन-संचालक साधारण सिपाही को मैं देश के सार्वभौमत्व का प्रतीक मानता हूँ; जिसकी अंगुली के इशारे बग़ैर न तो मोटरें चल सकती हैं और न बैलगाड़ी। मोटर भले बड़े लाट की क्यों न हो।"

"हीयर! हीयर!"—देवराज दुग्गड़ ने प्रशंसा के भाव में कहा।

"आपके मुँह से पुलिस की यह परिभाषा सुन कर चित्त प्रसन्न हो गया।"—राजमल जयपुरिया ने खिल कर कहा।

"गांगुली बाबू की बातों से भरोसा होता है कि"—राम भगवान बिन्नानी ने कहा—"वह सहज ही स्पष्ट कर देंगे कि यहाँ पर एकत्रित हममें से किसी का नाम पिताश्री जी की लिस्ट में है या नहीं? व्यापारी और बाज़ारी होने से हम अगर यह जनाने के लिये उत्सुक हों, तो इसमें ग़लत क्या है?"

"इत्मीनान रखिये"—गांगुली ने कहा—"इन काग़ज़ों में आप में से एक के भी घर या बुज़ुर्ग की चर्चा नहीं है। बैंग के काग़ज़ों की बात जयपुरिया जी से 'ब्लैक मेल' करने के लिये कहने को मैं नहीं आया हूँ। मैं तो पुलिस कार्यवाही करने के पूर्व आप-जैसे समाज और देश-हितैषी का परामर्श लेने आया हूँ। मैं किसी को अकारण अपमानित नहीं करना चाहता, बदनाम नहीं करना चाहता; पर, समाज या जन-द्रोही को बिना दंड दिलाये भी मैं रह नहीं सकता। क्योंकि, बदमाशों को दण्डालय के द्वार तक पहुँचाना ही हमारा कर्तव्य है।"

"गांगुली बाबू!"—राजमल जयपुरिया ने पुलिस को अपनी ओर आकर्षित किया—"आते ही आप ने कहा था कि किसी विख्यात मारवाड़ी के विरुद्ध आपके पास ऐसे प्रमाण हैं, कि समाज जान ले, तो हंगामा

उठ खड़ा हो। कहा था न ? क्या आप उक्त 'विख्यात' महाशय पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?"

"अवश्य—आफ़ कोर्स !"—गांगुली ने कहा—"मगर, मैं नाम या महल्ला या मकान नंबर नहीं बतलाऊँगा। केवल घटना सुना कर आप की सलाह से लाभ उठाने में लाभ-ही-लाभ है।"

इसके बाद चमड़े के बैग से चन्द काग़ज़ात निकाल, सिलसिले से संभाल, गांगुली पढ़ने लगा—"सन्...की बात है। दोपहर के वक्त मैं"—स्वर्गीय असिस्टेण्ट पुलिस कमिश्नर श्री गंगाधर गांगुली ने लिखा था—'जोड़ा साकू थाने पर इन्सपेक्शन के लिये गया हुआ था। अभी मैं पहुँच भी न पाया था, कि मोटर से बड़ा बाज़ार का करोड़पति सेठ... आ धमका।—'पहले दो मिनट मुझे दीजिए।'—सेठ ने घोर आग्रह से कहा—'आप की खोज में मैं अभी लाल बाज़ार गया हुआ था। वहाँ यह सुन कर, कि आप जोड़ा साकू गये हुये हैं, मैं ताबड़तोड़ मोटर भगाता हुआ आया हूँ।'

"सेठ मेरा पुराना परिचित और 'पार्टी'—पार्टी माने प्राप्ति का ज़रिया। सेठ किस तरह सेठ बना यह मुझे मालूम था। साथ ही, वह भी जानता था, कि मैं किन कर्मों से माले-मस्त पुलिस अधिकारी हूँ। याने हम दोनों के पर्दे आपस में खुले हुए थे। उसको उतावला और व्यग्र देखते ही मुझे लगा कि आज 'लकी वार' ज़रूर होगा। 'कहिए सेठ साहब, क्या बात है ? आख़िर आप इतने उद्विग्न क्यों हैं ?'

'देखिये गंगाधर बाबू !'—सेठ ने कहा—'आप से मेरा कुछ छिपा नहीं है। अतएव फ़िज़ूल ही बात को घुमा कर मैं नहीं कहूँगा। मैं एक बदमाश का ख़ून करना चाहता हूँ और उसके पचाने में आपकी सहायता चाहता हूँ। समझते हैं ?"

"ख़ून !"—मैं चमक उठा—"और ख़ून करने, क़ानून का गला काटने के पहले आप क़ानून और व्यवस्था के मानीते-रक्षक से मशविरा करने आये हैं ? आप पहले ख़ून करके आईये सेठ जी; और फिर देखिये, कि मैं आपको बचा लेता हूँ या नहीं। हत्या करने के पहले गुण्डे से, हत्यारे से, सलाह ली जाती है; पुलिस से नहीं। या आपने अपने हाथों ही हत्या करने का इरादा पक्का कर लिया है ? मामला क्या है ? ज़रा स्पष्ट तो कीजिये।"

"अपने ग्वाले भोला की मैं हत्या करना चाहता हूँ।"

"क्यों ? वह तो आपका काफ़ी पुराना नौकर है ? वही न, जो गुट्ठल, काला-काला-सा है ? कहाँ का रहने वाला है ?"

"बिहार, गया का"—सेठ ने कहा—"मगर, वह सांप है—सांप ! पीता है दूध, उगलता है ज़हर। हरामज़ादा जिसमें खाता है उसी में छेद करता है।"

"क्या किया आख़िर उसने ?"

"उसने जो किया वह उसकी हत्या के बाद आप को बतलाऊँगा।"

"ग़लत बात-सख़्त दण्ड के पहले संगीन अपराध का होना बहुत ज़रूरी है। हत्या तो आप जिसकी करना चाहेंगे, हो कर रहेगी। क्योंकि बड़ा-बाज़ार में न तो कलकत्ते की काली का राज है, न बंगाल के बंगाली का। वहाँ तो आप ही लोगों का बोलबाला है। यहाँ आने के पहले ही अगर आप ने भोला ग्वाले को मार डाला होता, तो भी ख़ून के बदले चांदी पाने के सिवा हम क्या हासिल कर लेते ? क्यों आप महाजन से हत्यारा बनने को बिगड़े जा रहे हैं ? क्या किया है उस ग्वाले ने ?"

"आप मानेंगे ही नहीं, तो सुनिए।"—सेठ का चेहरा भावों के तीव्र

आवागमन से लाल-पीला-सांवला बनता रहा—"कल मेरी स्त्री ने मुझसे कहा कि मेरे सारे बच्चे—दो लड़के और एक लड़की—मेरे नहीं, उस पातकी, नीच ग्वाले के हैं। आपही कहें—अपनी औरत से ऐसी बात सुन कर कौन मर्द मौन रहेगा ? मेरे मन में ऐसा होता है कि इस साले ग्वाले के बच्चे को कच्चा ही चबा जाऊँ। ख़ून पी लूँ; जैसे दुःशासन का भीम ने पी लिया था।"

"मगर, महाभारत का उदाहरण यहाँ उचित नहीं। दुश्शासन ने द्रौपदी को उसकी इच्छा के बिल्कुल विरुद्ध नंगी करके अपमानित करना चाहा था, पर, सेठानी की बात तो ऐसी नहीं मालूम पड़ती। फिर, आप ग्वाले का ख़ून न कर सेठानी को क्यों नहीं मारते ? या दोनों की हत्या क्यों नहीं कर डालते ?"

"मैं उसको यार के वियोग में घुला-घुला कर मारना चाहता हूँ।"

"मैं पूछता हूँ, आपके बच्चे भोला ग्वाले की औलाद हैं, इसे आपने औरत के कहने मात्र से मान क्यों लिया ? आपको अपने पर विश्वास नहीं। क्योंकि, आप स्वयं डूब कर मछली निगलने वाले पाखण्डी हैं। मैं समझता हूँ आपकी व्यभिचारी-वृत्तियों से ही कुढ़ कर बड़े बाप की बेटी सेठानी ने ऐसी अप्रिय, अनार्य, बात कह डाली होगी।"

"तीनों बच्चों के चेहरे जितना भोला ग्वाले से मिलते हैं उतना मुझसे नहीं। सेठानी के कहने पर मैंने अच्छी तरह से जाँच कर देखा। और अब, मारे अपमान के मेरा मस्तक फट जायगा अगर मैं उस नमकहराम की हत्या नहीं करूंगा।"

"परस्त्री या वेश्यागामी का अपनी पत्नी से सतीत्व की आशा रखना बबूल बोकर रसाल फल पाने की असम्भव इच्छा मात्र है।"

"मैं उपदेश सुनने नहीं आया हूँ, गांगुली बाबू! मैं द्वेष और अपमान से अन्दर-ही-अन्दर अवें-सा सुलग रहा हूँ। यह लीजिए! मैं हत्या करूँगा।"

सेठ ने हज़ार-हज़ार के दस नोट मेरे सामने रख दिए। मैंने कहा--"पहले हत्या कर डालिए, फिर, जो होगा देख लिया जायगा।"

× × ×

इसके बाद पन्द्रह दिनों तक सेठ की तरफ़ से कोई सूचना नहीं मिली और न किसी ग्वाले की हत्या का संवाद ही बड़ा बाज़ार अंचल से प्राप्त हुआ। ऐसे मौक़े पर वैसे सेठ को इतने सस्ते पर छोड़ना मैं नहीं चाहता था। मैंने टेलीफ़ोन किया, तो मालूम हुआ कि $\frac{3}{4}$ मकान के निचले हिस्से में कुछ मरम्मत हो रही है, सेठ काम देख रहे हैं। मेरे मन में सेठ को अचानक घेरने की इच्छा हुई। सो, मैं उस गली में पहुँच गया, जहाँ वह रहता था। दूर से ही देखा, सेठ खुद ही हिदायत दे रहा था। मुझे देखते ही पहले उसका चेहरा फक्क-सा हो गया, बिल्ले को देख कर चूहे का जैसे। गली के नाके पर खड़ी अपनी मोटर में ले जाकर मैंने उससे पूछा:

"क्या हुआ उस ग्वाले की हत्या का? आप फिर मिले नहीं!"

"हैं--हैं--हैं--!"--सेठ ने कहा--"उसे तो न जाने कैसे मेरे इरादों का पता चल गया। सो, उसी दिन से उसका कहीं पता ही नहीं है।"

"पता ही नहीं?"--"मैं ताड़ गया कि धूर्त बनिया मुझे बनाना चाहता है--"मैं समझा--हत्या आपने उसकी कर डाली! बतलाइये, कब और कैसे? नहीं तो, याद रहे, दाई से पेट नहीं छिपाया जा

सकता। आपका–मेरा पुराना परिचय है–ठीक है—पर, परिचय को कर्तव्य–पालन में बाधक नहीं होना चाहिए!"

"आप ही ने तो कहा था, कि हत्या करके मुझे सूचित करो!"

"और मैं यह कहना भूल गया था, कि ट्रक से, पम्प से पेट्रोल छिड़क कर सारे बड़ा बाज़ार में आग लगा दो। अंग्रेज़ी राज को उलट दो, कहना भी मैं भूल गया था। किसी के कहने से कोई हत्या करेगा और गवर्नमेण्ट के न्याय से बच जायगा? कैसे मारा या मरवाया भोला ग्वाले को? जल्द बतलाइये।"

सेठ ने जेब से चेक बुक निकल कर मेरी पालथी पर रख दी–"यह ब्लेंक चेक-बुक आपके हाथ में है। जितनी रक़म चाहिए लिख लीजिए, मैं दस्तख़त न करूँ, तो आदमी नहीं। मगर, आप भोला ग्वाले की बात दबा ही दीजिए।"

ग़र्ज़ कि पचास हज़ार रुपये का चेक किसी दूसरे के नाम से ले, कैश करा लेने के बाद ही मैंने सेठ को निर्भय किया। फिर भी, मेरे मन में जो 'पुलीस' था उसे यह जाने बग़ैर सन्तोष न हुआ कि आख़िर भोला ग्वाले का हुआ क्या? फलतः अच्छे सी० आई० डी० के आदमी लगा सेठ की गत दो हफ़्तों की गतिविधि का पता लगाया, तो, सिवा इसके कोई अस्वाभाविक या सन्दिग्ध बात सामने नहीं आयी, कि एक दिन उसके मकान के निचले खण्ड में मरम्मत का काम सारी रात चलता रहा। वह वही दिन था जिस दिन सेठ ने मुझसे हत्या करने की इच्छा प्रकट की थी। उस दिन के पहले न तो कभी बिल्डिंग मरम्मत का काम रात में हुआ था और न बाद में ही कभी हुआ। मेरे मन में आया कि क्या इस (अर्थ) पिशाच ने उस ग्वाले को मुर्दा या ज़िन्दा

ही उस बिल्डिंग की नींव में दफ़ना दिया ? क्या भोंदू-दर्शन मारवाड़ी धनिक ऐसी "वाशिंगटनी" युक्ति भी सोच सकता है ?

चुपके-चुपके मजूरों से जांच करने पर पता चला, कि उस रात काम करने वहाँ कोई नही आया था। फिर भी, दक्षिण दिशा की नींव में कुछ नया काम हुआ मैंने देखा। कोई दस गज़ के अन्दाज़ नींव खोद कर फिर से भरी गयी थी।

मुझे शक पूरा हुआ, लेकिन आगे सेठ को मैंने नहीं सताया; सोने के अण्डे देनेवाली मुर्गी को मार डालना अनुचित समझ कर। पर, मेरा विश्वास है, कि सेठ के उस मकान के दक्षिण ओर की नींव में ही भोला ग्वाले की हड्डियां गड़ी हुई हैं। मेरा विश्वास है, उस स्थान की खुदाई होने पर अवश्य ही रहस्योद्घाटन होगा। जब तक वह सेठ जीवित और धनी रहेगा तब तक उस मकान के उस कोने का भेद जानने वाले के लिए कल्पवृक्ष बना रहेगा।"

इन्सपेक्टर गांगुली ने अपने पिताश्री के काग़ज़ पढ़ना बन्द कर पत्र संभल कर पुनः बैग में रखते हुए कहा—"मेरे पिताजी ने भले ही अनुचित ढंग से पुलिसपद का दुरुपयोग कर रुपये बनाये हों; पर, मैं वैसा करना उचित नहीं समझता।"

"यही ?"—देवराज दुग्गड़ ने कहा—"जब मैं अपने पिता के बारे में खुल कर सोचता हूँ, तब मेरे चाचा जी कहते हैं, कि बाप को बेई-मान समझनेवाले पैतृक-सम्पत्ति त्याग कर बुज़र्गों को बद कहें, तो कोई बात भी। देखिये तो कंजूस का बेटा साखर्च इसलिये होता है, कि उसे कमाने का कसाला नहीं करना पड़ता। ये लड़के बुज़र्गों को अयोग्य कहने की ताक़त उन्हीं की कमाई से तो हासिल करते हैं।"

"देखा राजमलजी,-किंचित असन्तुष्ट भाव से कालीपदो गांगुली ने कहा—'थोड़ी देर पहले अगर मैंने यह कहा होता, कि किसी

दुग्गड़ परिवार की पाप-कथाएं भी मेरे पिता जी के क़ाग़ज़ों में हैं, तो, देवराज जी इस तरह ताना-भरा उपदेश मुझे न देते। भले का मुंह बुरा-से-बुरा पशु भी चाटने लगता है। पुलिस को बुरा-हृदय ऐसे ही लोग बनाते हैं।"

"देवराज जो अच्छी तरह से अपनी बात कह न सके"—राजमल जयपुरिया ने क्षमा मांगने के स्वर में गांगुली से कहा—"यह ज़रा बोलते विशेष हैं। मगर, पेट के साफ़ आदमी हैं। मन में कुछ भी नहीं रखते। मैं कहता हूँ, बुरे पिता की कमाई खाकर भी पुत्र अगर भला हो; तो, इसमें कोई हेठी है क्या? दिन-पर-दिन देश की परिस्थिति बदल रही है। परिस्थिति के साथ ही व्यक्ति और उसकी आदतें भी बदलती ही हैं। नहीं तो, मामला समय-विरुद्ध अर्थात 'आउट आव डेट' हो जाय। अंग्रेज़ों के रहते भारतीय पुलिस जनता के साथ जितना विमाता-व्यवहार कर सकती है, उसका सौवां हिस्सा भी स्वराज्य हो जाने पर संभव न हो सकेगा। इसलिए श्री गंगाधर जी गांगुली और श्री कालीपदो बाबू में अन्तर होना ही उचित है।"

इसके बाद कालीपदो गांगुली की तरफ़ मुख़ातिब होकर राजमल ने कहा—"फिर भी, गांगुली बाबू! मुझे विश्वास नहीं होता, कि मेरे समाज में ऐसा राक्षस-रूप भी किसी का होगा! मुझे लगता है, कि या तो स्वर्गीय गंगाधर बाबू को धोका हुआ, या ये पन्ने किसी जासूसी कहानी के कल्पित हिस्से हैं न कि सत्य बात।"

"मगर मैं"—कालीपदो गांगुली ने कहा—"इसके विरुद्ध सोचता हूँ। और मेरा विश्वास है, कि मेरे सावधान पिताजी ने अपने प्रिय पुत्र के लिए ग़लत सूचनायें नहीं छोड़ी हैं। फिर भी, मैं आपकी राय का आदर करता हूँ और आपके समाज को भारतीय समाज से भिन्न

नहीं मानता। सो, पिताजी ने कई परिवारों की पोलें जो लिखो हैं उनकी सचाई-झुठाई जानने के लिए किसी एक 'केस' को—समाज की स्वच्छता को ध्यान में रख कर—स्थालीपुलाकन्याय की तरह, टेस्ट केस, बनाना ही मुझे मुनासिब जान पड़ता है। आप कहें, तो इसी करोड़पति के मामलों की जांच कराऊँ। मैं किसी को सताना नहं। चाहता; पर यह भी नहीं चाहता, कि कोई 'समाज-सताऊँ' सेठ और सभ्य बन कर सुख की नींद सोये। बोलिये क्या राय है आपकी ?"

"समाज में अगर ऐसा कोई हत्यारा है, तो उसे फांसी की टिकठी पर नहीं, तो काले पानी हम–आप सभी पहुँचावें। इसमें दो रायें नहीं हो सकतीं। ऐसा कोई अभागा मकान हो जिसकी बुनियाद में इन्सा-नियत और न्याय का खून दबा हुआ हो, तो, उसकी ईंट-से-ईंट बजा देना ही सनातन और शाश्वत धर्म है। मगर, भ्रम में भरसक कोई भला आदमी सताया न जाय तो बेहतर।"

"अच्छा, फिर आऊँगा। सुझाव और सहयोग के लिए आप सभी मित्रों को धन्यवाद! आप विश्वास रखें, भरसक, निर्दोष आदमी पर कालीपदो गांगुली के हाथ कभी न उठेंगे। उठें, तो आपके हाथ और मेरे कान, आपके थप्पड़ और मेरे गाल।"

गांगुली के जाते ही रामनाथ रंगवाले के कहा—"बड़ा नेक पुलीस अधिकारी है।"

"रहने दे भाया!"—देवराज दुग्गड़ ने कहा—"पुलीसवाले अपने बाप के नहीं होते। जिसे आप नेक कह रहे हैं वहीं आपके ही सामने अपने बाप को बद कह रहा था!"

"लेकिन मक़ान का पता या सेठ का नाम उसने नहीं बत-

लाया।" बिश्नानी ने कहा—"किस करोड़पति की तरफ़ उसका इशारा हो सकता है?"

"सौ-में-सौ बार सच मानें आप"—राजमल जयपुरीया ने कहा—"उसका इशारा घीसालाल जी के अलावा दूसरे की तरफ़ नहीं था। मकान ज़रूर वही ३ सीतामाता स्ट्रीटवाला होगा जिसके बारे में लोग खुलेआम तरह-तरह के क़िस्से कहते सुने जाते हैं।"

"घीसालाल जी के बारे में आपकी धारणा क्या है?"—रामअवतार गोटेवाले ने राजमल से पूछा।

"सच बात तो यह है, कि घीसालाल जी-ऐसे आदमी ही हमारे समाज की बदनामी के ख़ास कारण हैं। पैसा-पैसा-पैसा! मलाई से पैसा, मलमल से पैसा और-निकले तो-मल से भी पैसा घीसालाल को चाहिए। उनकी चाल चलन की शिकायत भी इतने दिनों से होती चली आ रही है जितनी राम भगवान जी और देवराज जी की उम्र होगी। ऐसे ही लोग समाज-शरीर के कारबंकल, कैंसर हैं!"

"फिर भी अपने हैं"—राम भगवान ने कहा!

"अपने हैं?"—आश्चर्य पूछा राजमल जयपुरिया ने—"कैंसर, कारबंकल अपने? राम भजो भाया! भगवान् न करे कैंसर और कारबंकल किसी समाज के 'अपने' हों। शरीर का अंग होने पर भी प्रार्थना कर, पैसे देकर, इन्हें कटवाया जाता है—जलाया।"

"तो क्या आप भी पैसे ख़र्च कर इस कैंसर या कारबंकल को कटवायेंगे?"—राम अवतार गोटे वाले ने राजमल जयपुरिया से पूछा।

"मेरा ख़्याल है"—राजमल ने कहा—"हम सब सुधारक आज यहां इसलिये एकत्र हुए हैं, कि घीसालाल जी की बढ़ती बदनामी

से मारवाड़ी समाजका मुंह काला होनेसे कैसे बचाया जाय इसकी कोई युक्ति सोचे। कालीपदो गांगुली तो एक आवश्यक 'वार्निंग' याने चेतावनी हैं। आज कल जनता की आंखों पर चढ़े हुए पहले तो धनिक लोग और फिर मारवाड़ी धनिक ख़ास तौर से। भगवान् न करे पर, कभी ऐसा क्षण भी आ सकता है जब कि एक के पाप का प्रायश्चित्त समूचे समाज को करना पड़े। आप सभी बच्चे नहीं, युग की गति से असावधान नहीं। बतलायें, मुझे प्रकाश दिखलायें, घीसालाल जी या उन जैसे समाज-कलंकी लोगों की उचित औषधि है क्या ?"

"घीसालाल जी को पहले समझाना चाहिए"—गोटेवाले ने कहा।

"अपनी बुद्धि से जो करोड़ों की रक़म पैदा कर लेता है"—रामनाथ रंगवाले ने सुनाया—"अक्सर वह सारी दुनिया में डेढ़ से ज़ियादा अक़ल नहीं मानता। जिसमें से एक स्वयं उसके कब्ज़े में होती है और आधी में सारी दुनिया ! घीसालाल जी सलाह सुनने के शौक़ीन नहीं। फिर क्या सलाह उन्हें कोई देगा ? कि वह अपना आचरण सुधारें ? बिना प्रकट प्रमाण के शहर के एक मज़बूत धनिक या किसी से भी कोई ऐसी बात कह कैसे सकता है ? सामनेवाला मुंह नहीं नोच लेगा ?"

"गांगुली ने अभी एक करोड़पति की तरफ़ इशारा किया। वह मज़बूत मारवाड़ी-दीवार की महज़ एक ईंट उखाड़ना चाहता है। अगर इसमें उसे सफलता मिल गया, तो, क्या अखिल मारवाड़ी दीवार बहुत दिनों तक सलामत खड़ी रह सकेगी ? मैं घीसालाल जी का वकील नहीं, मारवाड़ी दीवार कि ईंट हूँ। डरता हूँ कि एक के खिसकने से कहीं धीरे-धीरे सारी दीवार ही न खिसक-मसक जाय। फिर पोल और पाप ही देखने चलें, तो क्या 'घर-घर एकै लेखा' नहीं नज़र आयेगा ? शराब में जैसे नशे के साथ नाश नज़र आता ही है

वैसे ही, धन की बुराइयां भी सहज हैं । और शराब से कम नहीं। असिल में ईमान से देखा जाय तो, समाज में बद अच्छा, बदनाम बुरा होता है । नहीं तो, घीसालाल जी बीस करते होंगे भले—पर उन्नीस और अठारह याने अधोगमन का शेष पहाड़ा पढ़नेवाले भी तो कम नहीं।"—राम भगवान बिन्नानी ने कहा।

"मेरी तो यह राय है"—राम अवतार गोटेवाले ने कहा—"कि हम आपस में चाहे जितने सुधार कर लें, पर, बाहर वाले के सामने या मुकाबिले में सभी मारवाड़ी वज्र--दीवार की तरह दृढ़ और एक रहें। यह युग एका का है ।"

"बाहरवाले कौन हैं ? बंगाली ? बिहारी ? यू० पी० वाले ? पंजाबी ?"—राजमल जयपुरिया ने पूछा—"समग्र भारत एक बड़ा परिवार--सा है और हम सब विविध--रंगी उसके अग--अंग हैं। मारवाड़ी समाज सारे भारतीय समाज से अलग--थलग रह कर न तो सुशोभित रह सकता है, न सुप्रसन्न । घीसालाल जी अगर बुरे हैं—और वैसे बुरे जैसा कि लोग कहते हैं—तो जितनी जल्दी उनका न्याय हो बेहतर। मारवाड़ी धन्य हो सकता है—मारवाड़ी होकर; पर, भारतीय आर्य होकर ही वह स्वानामधन्य या धन्य--धन्य होगा । जिसके दर्शनों में प्रत्येक सृष्टि ब्रह्ममय हो, उसीका मारवाड़ी को अलग मानना, बंगाली को अलग, उड़िया अलग, बिहारी अलग—आंखें रहते हुए देखने से इन्कार कर देना है । एक हों मारवाड़ी बेशक, अपनी सुविधा के लिए, न कि औरों के असुविधार्थ । घीसालाल जी की अधिक शिकायतें ग़रीब मारवाड़ियों ही के प्रति सुनी गयी हैं ।"

"या तो घीसालाल जी एक पब्लिक वक्तव्य देकर सफ़ाई दें"—राम नाथ रंगवाले ने कहा—"कि रोज़ ही उन्ही के पीछे एक बवण्डर क्यों खड़ा रहता है ? अन्यथा उनके दरवाजे पर प्रदर्शन किया जाय।

इस दुराग्रही का सामना किसी-न-किसी रूप के सत्याग्रह से करना होगा।"

"मैं पूछता हूँ"—अब तक चुप देवराज दुग्गड़ ने कहा—"आसन्न विपत्ति की सूचना घीसालाल को दे दी जाय या नहीं ? मेरा मतलब गांगुली बाबू से अपने जाति और व्यापार-भाई को सावधान किया जाय या नहीं ?"

"नहीं, हर्गिज़ नहीं!"—राजमल ने सतेज कहा—"गांगुली बाबू ने हमारा विश्वास करके उन काग़ज़ों को दिखाया और आशय सुनाया है। उनका उद्देश्य 'ब्लेक' नहीं, धवल है।"

"ख़ैर"—देवराज दुग्गड़ ने कहा—"इस बारे में सुधारक मारवाड़ी मण्डल अपने प्रेसिडेण्ट याने आपको उचित कार्रवाई का सर्वाधिकार देता है।"

इसके बाद पार्टी भंग हुई। मोटरों में सनकते आए तरुण सुधारक गुदगुद गद्दे, गालीचे, गावतकिए पर गम्भीर गवेषणा करने के बाद मोटरों में सनकते अपने-अपने स्थानों को विदा हुए।

तरुण मित्रों को बाहर तक पहुँचा कर राजमल जयपुरिया पुनः उसी कमरे में लौट आया और अपने निर्णय की निर्मलता या निर्ममता पर, मन-ही-मन, गंभीर विचार करने लगा।—"मगर, घीसालाल साधारण मारवाड़ी नहीं। करोड़ों रुपये उसके हाथों से इधर-से-उधर होते हैं। वह चाहे, तो किसी को पचास लाख रुपये एक मुश्त दान देकर भूल जा सकता है। और, फिर भी, उस हज़ारपाय की एक भी टांग टूटी न नज़र आये। घीसालाल से चन्दे लेकर संस्थाएं चलाई जा सकती हैं, कांग्रेस की मदद की जा सकती है। पैसे होंगे घीसालाल के, नाम होगा राजमल का। क्या न्याय करायेगा गांगुली ? भेद में

घीसालाल को बतला दूँ, तो गांगुली मेरा कर क्या सकता है ? और घीसालाल खुश होकर क्या नहीं कर सकता ? घीसालाल को मारना नहीं, बचाना चाहिए।

"वह पापी है।"— राजमल के मन ने ललकारा--धन से पिघलते धनिकवर्गी को— "कौन पापी नहीं है ? प्रसन्न घीसालाल चाहे, तो एक ही दिन कोई ऐसा सौदा करा दे कि लाखों 'पक' जायं। गांगुली पुलिस, नगण्य ! छिः! मुझे अपने भाई का साथ देना चाहिये। वह काला है, तो क्या हुआ ? अपना तो है ? 'टूटियो बांह गरे परै, फूटेहु विलोचन पीर होत'-- तुलसी दास महाराज ने कहा है।'

राजमल ने टेलीफोन का रिसीवर उठा कर नम्बर मिलवाया— "हलो ! हलो ! आप कौन हैं ? मैं राजमल जयपुरिया। जो---राजमल जयपुरिया। आप का शुभ नाम ?—" मगर इस बार जयपुरिया ने उत्तर नहीं पाया। फिर भी, टेलीफ़ोन की दूसरी तरफ़ जो बातें हुईं उसकी मन्द सूचना उसके कानों तक ज़रूर आई"— उधर से राजमल बोलता है—कुछ चन्दा-फंदा फेकेगा – बोल दे बाबू नहीं है।'

"हलो ?" उधर से दूसरे किसी की आवाज़ आई—"बाबू नहीं हैं।" साथ ही राजमल की बातें सुने बगैर उधरवाले ने कनेक्शन काट दिया ! और राजमल के ऊपर जैसे सौ घड़े पानी ! वह तरुणों को कुछ और सलाह देकर स्वयं घीसालाल की टकसाली-बुद्धि से सोने और चांदी के सिक्के 'मिण्ट' करना चाहता था ! लोभ ने उसके मन में त्याग की बंसी बजा कर, देशभक्तों और कांग्रेस की मदद का बहाना बता कर, काले को उज्वल याने मल कोमलय बना दिया था, बिना यह विचारे कि देशभक्तों या कांग्रेस के पेट में जाकर विष अमृत कैसे बन जायगा ? कैसे हो जायगी दुर्गन्ध सुगन्ध ?

और इतने पर भी' जो धनान्ध घीसालाल ने उसे नहीं पहचाना, टेलीफोन छोड़ दिया, बहाना करा दिया तो, राजमल जयपुरिया के

अविवेक के मुंह पर थप्पड़-सा लगा। वह पानी-पानी होकर पछताने लगा कि उसने तरुणों को धोका क्यों दिया? लोभ-वश अपना निर्णय बदला क्यों उसने?

असिल में राजमल जयपुरिया सहृदय, भावुक मारवाड़ी। मारे शर्म के उस रात उसने ब्यालू नहीं लिया।

'ब्लडी ज्यू' : ४

करोड़पति घीसालाल और समाचार-पत्र-पति घमण्डीलाल ए०ए० की दोस्ती गिरगिटानी याने रंग बदलेवाली। साल में तीन बार पत्र-संचालक जी मिल-मालिक जी से प्रसन्न होते और तेरह बार अप्रसन्न। घमण्डीलाल के अख़बार का नाम 'जग-रक्षक' या 'दैनिक जगरक्षक' था। आज से तीस साल पूर्व जब घमण्डीलाल एम० ए० आत्मरक्षा करने में असमर्थ हुआ, तब उसने 'जग-रक्षक' नाम का अख़बार निकाला था। इसके लिए उसने सेठ घीसालाल से दस हज़ार रुपये उधार लिए थे—"घमण्डी लाल जी" घीसालाल ने कर्ज़ देते हुए उपदेश दिया था—"पैसा लगाना, तो चोखे धन्धे में। यह अख़बार निकालना भी कोई धन्धा है? मैं तो नहीं मानता। इसका अर्थ यह नहीं, कि मैं रुपये संकोच से दे रहा हूँ। रुपये तो आप ऋण ले रहे हैं, सूद के साथ भरेंगे। पर, अगर आप मुनाफे का धन्धा करेंगे तो मेरे रुपये आराम से लौटेंगे। सूद लेने के बाद कर्ज़दार का मैं शुभचिन्तक हो जाता हूँ. वैसे, आप अपनी मर्ज़ी के मालिक हैं।"

"न जाने क्यों"—घमण्डीलाल ने जवाब दिया था—"अख़बार के धन्धे में मुझे करोड़ों कमाने की कुंजी नज़र आ रही है। अतः मैं प्रयोग करके देखना चाहता हूँ—सक्रिय आदमी की तरह। रहे आपके रुपये, सो, मेरे हाथ में पेपर होने पर, उनकी अदायगी में देर नहीं लगेगी। देख लीजियेगा।"

घमण्डीलाल एम० ए० ने जब 'जगरक्षक' निकालने का निश्चय किया तब 'भारतमित्र' पुराना हो चुका था और 'कलकत्ता समाचार' कमज़ोर।

"दोनों पत्र क्यों नहीं चले?"—सोचा मज़े में घमण्डीलाल ने, तो उसकी आत्मा ने यही उत्तर दिया, कि सम्पादकीय-विभाग का महत्व सब कुछ और विज्ञापन-विभाग का महत्व बिल्कुल न होना ही पुराने मगर, सयाने हिन्दी पत्रों के पतन का कारण था। सो, दैनिक निकाल कर भी घमण्डीलाल ने अपने यहाँ सम्पादन-विभाग बिल्कुल

नहीं रखा। क्योंकि, अख़बार वह स्वयं लिख लेता था। केवल एक प्रूफ़ रीडर और क्लर्क रख कर उसने 'जगरक्षक' कार्यालय खोल दिया था। वह न बाहर से तार मंगाता और न महंगी न्यूज़-सर्विस लेता। कुछ पुराने समाचार और शेष बड़ा बाज़ार कलकत्ता के सच और कल्पित संवादों से उसका दैनिक कलेवर काला निकलता, जिसमें ऐसे सस्ते शीर्षक होते जैसे—"बड़तल्ले में नाक कट गई!" "मछुआ बाज़ार में सजीली सेठानी!" "चमार और चांई चमत्कार! अफ़ीम चौरास्ते पर!" "सोनागाछी में मोटे सेठ के खोटे काम!" अख़बार छपता चिथड़, चौपनियाँ, मगर, न जाने क्या देख कर विष्णु-प्रिया लक्ष्मी घमण्डीलाल पर ख़ुश हुईं (सिवा उसके उल्लू की तरह मुंह के) लोग हैरान थे, हैरत से! पर, लक्ष्मी की प्रसन्नता का रंग तो देखिए! घमण्डीलाल एम० ए० ने 'जगरक्षक' को अस्तित्व में लानेवाले करोड़पति मित्र घीसालाल ही को पहला घिस्सा दिया!

बात यों हुई। एक दिन साढ़े दस बजे सवेरे कोई बुद्धू बिहारी विद्यार्थी सहायता पाने की आशा से घीसालाल के घर की ओर चला। राह में विद्यार्थी ने आगे-आगे जाती एक षोडषी बाला देखा। ज़रूर युवती ने युवक को आकर्षित किया होगा; क्योंकि, कई क़दम आगे बढ़ पीछे मुड़ कर, भोंड़े-भाव से उसने युवती की ओर देखा था। लेकिन बिहारी विद्यार्थी उस युवती को उसी मकान में घुसते देख कर ठिठक गया जिसमें वह स्वयं जाना चाहता था। वह डरा, कि साथ ही घुसने से संदेह कर कहीं यह छोकरी चिल्ला न उठे। षोडषी के जाने के पन्द्रह मिनट बाद वह $\frac{3}{1}$ नंबर के तिमंज़िले पर चढ़ा और संयोग से कोई बाधा न पा सीधे वहीं पहुँचा जहां सेठ के होने की सम्भावना थी। कुछ संकोच, कुछ भय से दबे पांव वह एक बड़े कमरे में पहुंचा, तो देखता क्या है, कि दो आदमी गुत्थम-गुत्थ लड़ रहे हैं। मारे आवेश के एक दूसरे को काटे खा रहा है। बेवकूफ़ युवक ने झपट कर बीच-बचाव करना चाहा—"क्यों लड़ते हो?" पर, दोनों की शक्ल देखते

ही बिहारी को काटो तो लहू नहीं ! उसने देखा, कि कोई काला-कलूटा, नाटा, गुट्ठल आदमी उसी युवती से गुत्थम-गुत्थ था जो उसके आगे-आगे ज़रा ही पहले मकान में दाखिल हुई थी !

"तुम कौण है"—लाल-लाल आँखें दिखा कर पूछा रति-विरहित पशु-पुरुष ने। विद्यार्थी ने कांप कर जवाब दिया—"क्षमा कीजिये ! मैं धोके में आ गया ! विद्यार्थी ग़रीब हूँ, मदद चाहिए।"

"साले चोर !"—तड़ातड़ कई थप्पड़ मारे घीसालाल ने और एक लात मार कर उसको कमरा-बाहर निकाल दिया। यह समाचार बुद्धू विद्यार्थी ने अपने एक संगी से कहा जो 'जगरक्षक' में कम्पोज़ीटर था। उसी के साथ सेठ की शिकायत करके मदद पाने को जाकर लात खाने वाला विद्यार्थी जब घमण्डीलाल के सामने आया, तो सारी कथा सुनते ही घमंडी पुलकायमान हो उठा।

"कितने रुपये पाने की आशा में तुम घीसालाल के यहाँ गये थे ?"

"पांच, दस, हद-से-हद पंद्रह पाने से तो मैंने उसको माता-पिता तक कह दिया होता।"—रुदितमुख बिहारी ने कहा—"मगर, उसने मुझे वो-वो थप्पड़ मारे, कि कसाई को नरक में एक-एक के सौ-सौ मिलें देखिए, मेरे गाल नीले हो गए हैं।"

"अच्छा पंडित !"—बिहारी विद्यार्थी से अख़बारी संचालक ने कहा—'२५ रु० महीने पर मैं तुमको 'जग रक्षक' का 'सिटी रिपोर्टर' नियुक्त करता हूँ। क्या तारीख़ है आज ? मार्च ३१। ठीक ! लीजिए रुपये २५), अग्रिम नहीं, इसी मार्च महीने की तनख़्वाह। पहली मार्च से आप 'जग रक्षक' के नगर रिपोर्टर हैं। ३१ से नहीं, पहली से, भूलियेगा नहीं और वक़्त पर यही कहियेगा। समझे ?"

मारे ख़ुशी के युवक ने कुछ नहीं समझा !

"मतलब यह—बतलाया घमण्डीलाल ने"—कि आप 'जग रक्षक' के रिपोर्टर की हैसियत से सेठ घीसालाल के यहां उस दिन गये हुए थे, भीख मांगने नहीं ! सो, आपका अपमान 'जग रक्षक' का अप-

मान, उसके संचालक का अपमान है ! युवती से वह गुत्थम-गुत्थ-कांड आपने मज़े में देखा था न ?"

"बिलकुल मज़े में; सेठ जी !"

"बस आप से योग्यतर सिटी रिपोर्टर पत्रकारिता के इतिहास में न हुआ है और न हो पायेगा !"

सो, उस दिन 'जगरक्षक' के सम्पादकीय-विभाग में पहली नियुक्ति हुई सिटी रिपोर्टर की। उसके लिए विज्ञापन लानेवाले के सामने एक कुर्सी लगा दी गई। इस काम से फ़ुरसत पाते ही घमंडीलाल ने टेली-फोन उठा कर नंबर मिलाया।

"हलो ! हलो !—'जगरक्षक'—आप कौन ? जय राम जी की सेठ साहब ! हलो ! देखिये ! आज सवेरे जिस नवयुवक को आपने मारा था, वह दान मांगने वाला भिखारी नहीं...'जगरक्षक' का सिटी रिपोर्टर था ! बाज़ार की गति-विधि पर आपका मत जानने को गया था। मगर उसने आप जैसे सनातनी सेठ की जो गति-विधि देखी उसकी कथा सुन कर मेरा मस्तक एक मित्र और समाज-रक्षक के नाते झुक गया...मारे शर्म के ! हलो !... क्या ?? आपने उसे पहचाना नहीं, अतः मैं क्षमा कर दूं ? क्षमा भगवान् करे उसे जो समाज की ठोकरियों से उठापटक करता है ! मित्र के नाते सूचना दी है। कल के 'जगरक्षक' में आपके चित्र के साथ सारी घटना विस्तृत जा रही है ! क्या ? हलो ! वह किसकी लड़की थी, इसका भी पता हमने लगा लिया है। वह कुमारी—आपकी पत्नी—सारा समाज इस संवाद को पढ़ कर खलबला उठेगा ! क्या ? क्या लूंगा इस संवाद को दबाने के लिये ? दमड़ी नहीं। संचालक 'जगरक्षक' रिश्वतख़ोर पुलिस नहीं। क्या ? हलो ! हां, हां, हां, ! दोस्त के नाते समाचार न छापूं, तो आप दस हज़ार क़र्ज़ वाला काग़ज़ भरपाई कर देंगे ? लाख रुपये से कम की इज़्ज़त उस लड़की की नहीं ! फिर 'जगरक्षक' का मान। फिर, मेरी इज़्ज़त। इस सब की क़ीमत महज़ दस हज़ार ! क्या ? ग्यारह ? ना ! हलो ! क्या ?

बारह ? ना बाबा ! तेरह ? ना, ना, ना ! मोलभाव न करें ! पचास हज़ार से पाई कम में हलक मान की मरम्मत मुमकिन नहीं ! क्या ? पंद्रह ? माफ़ कीजिये ! मैं टेलीफ़ोन रखता हूँ । झंझ मुझे पसंद नहीं ! क्या ? पच्चीस ? दोस्त के नाते ? ख़ैर... ख़ैर । मैं भी मोलभाव नही करता । आदमी को बनाने में जो मज़ा है, बिगाड़ने में नहीं । रुपये बैंक बन्द होने के पहले नक़्द भेजिये ! हद-से-हद चार बजे तक । नहीं तो, आप जाने आपका काम जाने !"

गर्ज़ कि उसी दिन घमंडीलाल के कर्ज़ की ही भरपाई नहीं हुई, ऊपर से पंद्रह हज़ार पलेथन के और भी मिले ! इस घटना के कई दिनों बाद जब घमंडीलाल और घीसालाल की बाज़ार में मुलाकात हुई, तो घमंडीलाल की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए घीसालाल ने कहा—"भाया. कर्ज़ लेते वक़्त जब तुमने यह कहा कि अदायगी में देर न होगी, तब मैंने यह नहीं समझा था. कि मेरी ही हथेली पर मेरा ही उस्तरा तेज़ कर मुझे ही मूंडा जायगा ! और मैं एक लाख में बाघ ! पर भाया ! तू मेरा भी गुरू निकला । मान लिया !"

घमंडीलाल एम० ए० के बारे में बड़ा बाज़ार में सैकड़ों कटु कथाएं, जिनमें से एक आप सुन चुके हैं, एक और सुनिए । एक बार राजमल जयपुरिया के यहाँ उज्जैन से कोई भारी ज्योतिषी आया । उसने यह दावा किया, कि पर्दे के पीछे बैठ कर कोई हाथ दिखाये तो भी वह उसका भूत, वर्तमान, भविष्य पर्दे के बाहर कर सकता है । सेठानी के बहाने राजमल ने किसी महाराजिन के हाथ में मोती जड़ी सोने की चूड़ियाँ डाल कर दिखाया, तो ज्योतिषी ने उसी वक़्त बतला दिया, कि यह हाथ तो किसी दासी—मगर, कुलीना के हैं ! राजमल का हाथ देख कर भी उसने अनेक ऐसी बातें बतलायीं, कि जयपुरिया की श्रद्धा ज्योतिषी पर बहुत बढ़ गयी ! उसने 'जगरक्षक' में प्रकाशनार्थ प्रशंसा लिख भेजी । इस पर घमण्डीलाल ने फ़ोन किया कि बिना परीक्षा

लिए ऐसी कपोल-कल्पना छापने को वह तैयार नहीं ! अन्याय न हो, अतः वह तीन बजे दिन, स्वयं जयपुरिया के यहाँ चुपचाप आयेगा ! यही हुआ ! पर्दे के पीछे बैठ कर घमण्डी ने अहने हाथ उज्जैनी ज्योतिषी के आगे फैलाये ।

"ये हाथ'—ज्योतिषी ने कहा—"मुझे सच बोलने के लिए क्षमा किया जाय—जिसके हैं उसे शाकाहारी होने पर भी रक्त-पिपासु होना चाहिए, सुनागरिक दिखने पर भी डाकू होना चाहिए। डाकू भी मामूली नहीं, जनपदों को लूटने वाला। और...और।" – हिचका ज्योतिषी— "ऐसे अपराधी के ये हाथ हैं जिसका विस्तृत वर्णन ख़तरेसे ख़ाली नहीं, अतः और मै नहीं बतलाना चाहता!"

मारे क्रोध के पर्दा फाड़ कर घमण्डीलाल एम० ए० ने अपना लाखों में एक विचित्र मुख दिखाया"—आप ज्योतिषी नहीं ४२० हैं। उसने ललकारा—"आप भाग्य नहीं देखते झख मा ते हैं!"

"मैं क्षमा चाहता हूँ!—"ज्योतिषी ने कहा—"आपका ललाट देखने से कुछ और ही रहस्य खुलता है। हाथ नहीं, आपका भाग्यफल माथे की रेखाओं से ही कहना उचित है। पर्दे में आपको एक्सरे भी नहीं पहचान सकता।"—ज्योतिषी मन-ही-मन बुदबुदाता हुआ कुछ जोड़ने लगा—"आपको जीवन में कोरे काग़ज़ों के पहाड़ को कलंकित याने काला करना चाहिए पत्र और पुत्र में आपको पुत्र कम प्रिय हैं, अतः पुत्रों से आपको ख़तरा और पत्रों से परम परम प्राप्ति है। स्याही से आप लोगों का रक्त-शोषण करेंगे, आपके हाथ में वैसी रेखा है। मतलब यह, कि कामधेनु मिले, तो उसका दूध और भागीरथी पर कब्ज़ा हो जाए तो गंगाजल भी आप बेचेंगे ! बिना यह समझे कि कामधेनु और गंगा-दूध या पानी बेचे बिना ही-मनोवांछित सामान दे सकती हैं। आपका शुभ नाम ?"—पूछा राजमल जयपुरिया से ज्योतिषाचार्य ने ।

"श्री घमण्डीलाल जी एम० ए० संचालक दैनिक 'जगरक्षक'। आप विख्यात पुरुष, अद्वितीय आदमी, अद्भुत अख़बारनबीस हैं।"

❀ ❀ ❀

घमण्डीलाल को बुद्धू बिहारी विद्यार्थी की तरह तरुण एक मूर्ख मिर्ज़ापुरी मिश्र भी मिला—'मिडलची'। वह 'जगरक्षक' में कुछ काम मांगने आया था!

"अपनी विशेषता बतलाइये।—"पूछा नीरस, कठोर घमण्डीलाल ने —"कोरे मिडिल पास से क्या होगा?"

"कोरा नहीं, मैं डबल मिडल पास हूँ।"—मूर्ख मिर्ज़ापुरी मिश्र ने कहा—"मतलब यह, कि थर्डक्लास से मिडल तक हर क्लास में दो-दो साल पढ़ने के कारण मेरी पढ़ाई डबल हुई है। सो, मिर्ज़ापुरी मिडिलची अगर आगरे के बी० ए० के बराबर योग्य साबित न हो, तो आपका टेलीफ़ोन, पुलीस का दफ़्तर, लोहे की हथकड़ी और हाथ मिर्ज़ापुरी मिश्र मुन्नीलाल के।"

"आप कर क्या सकते हैं?"

"सब कुछ।"

"झाड़ू लगा सकते हैं?"

"बेहतर-बेहतर से,—"बोला मिश्र मुन्नीलाल!

"ब्राह्मण होकर झाड़ू लगाने में आपको संकोच न होगा?"

"वैश्य होकर ब्राह्मण से झाड़ू लगवाने में अगर आपको ग्लानि नहीं, तो, ब्राह्मण तो युग युगान्तर से परिमार्जक रहा है।"

"समझा। मगर माफ़ कीजिये, मिसिर जी, फ़िलहाल मुझे आदमी आवश्यक नहीं। फिर मैं बुद्धुओं को बसाता हूँ, इसलिए, कि उन पर शासन कर सकूं और आप हैं परम चतुर।"

"परम चतुर मुर्ख ही को तो कहा जाता है ?"—तरुण मिर्ज़ापुरी ने पूछा—"बुद्धूपना ही अगर 'जगरक्षक' कार्यालय में जगह पाने के लिए प्रशंसा-पत्र है, तो आपके लिए आवश्यक मलीन मूर्खता भी मेरी मज्जा में मिलेगी ।"

गर्ज़ कि २५ रु० मासिक और विज्ञापन से प्राप्त रक़म पर दो पैसा रुपया कमीशन देने के क़रार पर घमण्डीलाल ने मुन्नीलाल मिसिर को 'जगरक्षक' के विज्ञापन-विभाग का डाइरेक्टर नियुक्त किया। दूसरे ही दिन उस्ताद घमण्डीलाल ने सबसे पहले मिर्ज़ापुरी मिश्र के ग्राम-संस्करण का सर्वथा नगर-संस्करण कर डाला था और कुरता-धोती उतरवा कर शर्ट और सूट पहना, हैट और बूट से सजा, पूरा 'पिलपिली' साहब बना, "फिरेगा सो चरेगा" मन्त्र बता, कलकत्ते की सड़कों पर सरपट रपटा दिया था।

सारा कलकत्ता जानता है 'जगरक्षक' के विज्ञापन लानेवाले मूर्ख मिश्र जी उर्फ़ पिलपिली साहब को २० वर्षों तक ६ बजे सवेरे से १२ बजे रात तक २० मील के व्यास में बसे कलकत्ता महानगर या नरक की परिक्रमा-पर परिक्रमा करके 'जगरक्षक' के विज्ञापन-विभाग को मिर्ज़ापुरी मिश्र ने मालामाल और घमण्डीलाल को लाल कर दिया था। २० वर्षों में कम-से-कम ५-६ लाख के विज्ञापन वर्षा-आतप-हिम से मुहिम कर मिश्र ने घमण्डीलाल को दिये होंगे। घमंडीलाल का पुराना अदना प्रेस अब बड़ा हो गया। दो बंगले और मोटरें तीन हो गयीं। पर 'पिलपिली' साहब उर्फ़ मिर्ज़ापुरी मिश्र की दुर्दशा ज्यों-की-त्यों रही। दो ही साल की विज्ञापन की आमदनी से चमक कर घमण्डी लाल ने मिश्र को दो-पैसे रुपया कमीशन देना भी बन्द कर दिया था। वेतन भी उसका इतने अर्से में सवा सौ माहवार के आगे न पहुँच सका। उसी में सूट, उसी में साइकिल, उसी में मकान-भाड़ा, उसी में भोजन और उसी में

मिर्ज़ापुर में आसरे में बैठे ग़रीब भाई-बहनों, परिवारियों का 'रोटी-लूण' ग़र्ज़ कि कलकत्ते में तरुणावस्था में आया मिर्ज़ापुरी मिश्र २० वर्ष खटने के बाद सूख कर जब करुण दिखने लगा; खूंटी-से उसके तन पर सूट टंगा-सा दिखता-निष्प्राण, तब उस बुद्धू की कमाई से अरुण बना घमण्डीलाल चर्बी और मांस से लद कर भैंसा, रजतभर्त्ता से फूल कर बरसाती गोबर हो गया था। फलतः मुन्नीलाल अपने दुर्भाग्य और घमण्डीलाल एम० ए० के शोषण- कर्म पर जहां-तहां विकल बकता फिरता। 'ब्लडी ज्यू' या रक्त--पिशाच यहूदी वह कहता घमण्डीलाल को—"दूसरे दांत से पकड़ते हैं, पर, यह पशु पैसों को पूंछ से पकड़ता है। नरक है इसकी नौकरी, जिसमें आदमी का अर्क उतार लिया जाता है ।"

जब अच्छी तनख़्वाह देकर विज्ञापन-मैनेजर रखने की शक्ति घमंडीलाल में आई तब उसने ८०० मासिक पर अंग्रेज़ को नौकर रखा। और और 'जगरक्षक' की जड़ जमाने वाला हिन्दुस्तानी पिलपिली साहब क़िस्मत पीट कर रह गया। इस बार तो मिर्ज़ापुरी मिश्र अपने खाँटी ढंग पर आ गया। 'जगरक्षक' कार्यालय में ही सबके सामने उसने घमण्डीलाल को फटकारा।—"बाबू जी,. कहने ही के लिए आप देश और देशी के भक्त हैं। आप न्याय का नाम मात्र जानते हैं। आप आर्य नहीं, अनार्य हैं। वैश्य नहीं, वैश्या हैं। विवेकी व्यापारी नहीं, 'ब्लडी ज्यू' हैं। मुझे आपने आज तक सवा सौ रुपल्ली से ज़्यादा नहीं दिया और उस गोरे को ८०० रु० मासिक देंगे।"

"ब्राह्मण को सन्तोषी होना चाहिए मिश्र जी !"—मुन्नीलाल की बातों से अविचलित, घाघ घमण्डीलाल ने कहा—"देशी का काम देशी करता है, विदेशी का विदेशी। इस अंग्रेज़ के सबब मुझे 'स्टेट्समैन', 'टाइम्स आव इण्डिया' और अच्छे-अच्छे अंगरेज़ी पत्रों में छपने

वाले मोटे विज्ञापन मिलेंगे। यह काम हिन्दुस्तानी कर ही नहीं सकता। फिर आपकी तो यह संस्था ही है, जब कि उसकी केवल तनख़्वाह है।"

फिर भी, मिर्ज़ापुरी मिश्र का असन्तोष गया नहीं। न्याय पाने में असमर्थ महज़ गालियां और शाप देते-देते वह बीमार पड़ गया और एक पखवारे तक काम पर न पहुँच सका। इसके बाद जब हाज़िर हुआ तो पता चला, कि उसकी जगह पर घमण्डीलाल ने एक एम० ए० पास बेकार को ५० रु० मासिक पर, पिछले दस दिनों से नियुक्त कर लिया है।

"मैं आपको आदर के साथ जब तक आप चंगे न हो जायें तब तक की बेतनख़्वाह छुट्टी—देता हूँ।'—कहा मूर्ख मिश्र से चालाक पत्र—संचालक ने।

इसके बाद मिर्ज़ापुर जा कर अभागा मिश्र फिर कलकत्ते न लौटा। शुष्क स्वार्थ का वह कठोर घूंसा मारा था घमण्डीलाल ने उसके सीने में, कि बेचारा मर ही गया। पीछे अबला नौजवान और बच्चे अनाथ छोड़ कर!

सच तो यह है कि जब खटते--खटते आधा दर्जन विज्ञापन लाने वाले खप गए; मर गये, आधा दर्जन सम्पादक 'शाकाय' 'लवणाय'— याने साग और नमक-मात्र से जीवन-यापन करतेहुये—तब घमण्डीलाल एम०ए० करोड़पति हो गया और 'जगरक्षक' एक की जगह कलकत्ता, लखनऊ, नागपुर, बम्बई चार—चार जगहों से निकलने लगा। जब देश में क्रान्ति चल रही थी और विदेशी शासकों के विरुद्ध प्रकट और छिपा युद्ध चल रहा था उस हवा में शायद ही देशी भाषा का आम तौर पर और हिन्दी का ख़ास तौर से कोई पत्र पनप पाया हो। कभी-कदाच कोई पत्र कुछ कमा भी लेता तो अंग्रेज़ उससे चौगुनी रक़म इस-या-उस बहाने वसूल कर लेता था। पर, घमण्डीलाल को अंग्रेज़ या लाल बाज़ार ने कभी 'पराया' न समझा। राष्ट्रीय आन्दोलनों में

कई देश-सेवकों को टेलीफ़ोन से पता दे कर घमण्डीलाल ने पुलीस से पकड़वा तक दिया था। ऐसा सारा बड़ा बाज़ार जानता, कहता, मानता है। "जगरक्षक की पालिसी सबकी रक्षा है"—वह गोरों को चापलूसी से समझाता था। इस तरह राष्ट्रीय-युद्ध और विश्व-युद्धों में जब कि कलकत्ते के एक-एक कर अनेक सत्यवान्-पत्र तबाह हो गये तब 'जगरक्षक'-संचालक के कार्यालय में सफलताओं का जमघट यों लग गया था—जैसे कलकत्ते के मुखर मरघट में मुर्दे!

और अब पुराना रंग बदल गया। मामूली हैण्ड-प्रेस से, बिजली से चलने वाली डबल डैमी फ़्लैट मैशीन से, कठोर लौह-यान्त्रिक-सफलता रोटरी-दैत्याकार तक आई। विज्ञापन-विभाग, सम्पादकीय-विभाग, विभाग-पर-विभाग याने भाग-पर-भाग बढ़े। घमण्डीलाल का बैंक एकाउण्ट बढ़ा विपुल, जैसे पटने में मच्छर या कलकत्ते के बड़ा बाज़ार में कूड़ा।

ग़र्ज़े कि काल और चाल से घमण्डीलाल के निकट के सभी बढ़े। नहीं बढ़ी, तो क्लर्कों, सम्पादकों, कम्पोज़ीटरों, की तनख्वाहें!

इस पर खेद प्रकट करते हुए एक स्थानीय मज़दूर नेता ने किसी गोष्ठी में एक दिन कहा था कि—"भला कमपढ़े या भोंदू मजूरे कष्ट पाकर चुप रहें तो, कोई बात भी, मगर ये पत्रकार-श्रमजीवी जो भगवान से लेकर बड़े लाट तक की ख़बर लेने योग्य अपने को जन्म-जात समझते हैं, ऐसी रक्ताक्त-विषमता में क्यों चुप रहते हैं? विद्रोह क्यों नहीं करते? अपने ही रक्त से चर्बीले बने 'जगरक्षक'-जैसे किसी कार्यालय पर कब्ज़ा करके बौद्धिक श्रम और परिश्रम करनेवाले श्रम-जीवी बैठ क्यों नहीं जाते? कदाचित् इसमें प्राण भी चले जांए तो महज़ एक दिन—तीस दिनों की किचकिच से राहत तो मिलेगी। मगर, इस युग में मोटेमल मालिकों द्वारा मजूरों के प्राण लिए जाना हंसी खेल नहीं—लोहे के चने चबाना है!"

भूगर्भस्थ कलकत्ता : ५

रामअवतार गोटेवाले को राजमल जयपुरिया के यहाँ हमने सुधारक तरुणों की मण्डली में देखा है; सुना है बढ़-बढ़ कर बातें बघारते। साथ ही, देवराज दुग्गड़ को भी हम भूले न होंगे। वे दोनों ही सुधारक उस दिन धर्मतल्ला-चौरंगी के चौरस्ते से सटे ट्राम डिपो के पास, पब्लिक अंपुलिस की दक्षिण ओर, महानगर के सन्ध्याकालीन तुमुल कोलाहल में एकान्त ढूंढ कर, फुसफूस बातें कर रहे थे।

"तुमको मालूम है"—दुग्गड़ ने गोटेवाले से कहा—"मुझे ठीक पता है–तुम जानते हो, वह जगह कहाँ है। तो भाया! आज मुझे भी वहीं ले चलो। आज उधर ही की सैर सही। और सारा खर्चा मेरे जिम्मे। मैं रुपये लेकर आया हूँ।"

"कितने?"—रामअवतार गोटेवाले ने पूछा—"जब तक परिचय और साख न हो जाए, तब तक पाँच हज़ार से कम रुपये जेब में रखने वाला वहाँ घुसने नहीं पाता।"

"मेरे पास हज़ार-हज़ार के नोट हैं—पन्द्रह;"—दुग्गड़ ने जवाब दिया—"मगर, क्या पाँच हजार वहाँ खोना ही पड़ता है?"

"ऐसी कोई बात नहीं"—रामअवतार ने समझाया—"पाँच हज़ार से कोई भाग्य का साँढ़ पचास हज़ार या पाँच लाख बना कर अपने घर जा सकता है। या जी–चाहे जितनी रक़म का ख़तरा उठा

कर बाक़ी बचा ला सकता है। पाँच हज़ार की शर्त इसलिये है कि ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरों की गुज़र न हो पाये। वह मामूली जगह थोड़े ही है।"

"सुना जाता है जुआड़ियों को शराब और सुन्दरियाँ भी वहाँ सुलभ हैं।"—जीभ से पानी टपकाता देवराज अपनी बात पूरी न कर पाया कि रामअवतार ने उसे बाधा दी—

"धीरे बोलो। कोई सुन लेगा, तो लेने-के-देने पड़ जायँगे। वहाँ शराब, सुन्दरियाँ सभी सदा सुलभ। आम-के-आम और गुठलियों के दाम। पीजिए, खाइये, आनन्द कीजिए और क़िस्मत साथ दे, तो घर लौटते वक़्त १५ की जगह ५० हज़ार लेते भी जाइये। वहां बीसों लाख रुपये का खेल रोज़ ही होता है। मैंने तो अपनी आंखों देखा है—सुधारक होते हुए भी।"

"इससे और सुधारक होने से क्या सम्बन्ध?" चश्मों के शीशे साफ़ करते हुए दुग्गड़ ने कहा—"यह तो धन्धा है—धन्धा। फिर तुम्हारे तो पिता इसके मुख्य मैनेजर हैं; अतः तुम्हारा यह पैतृक धन्धा है। पैतृक-धन्धा न छोड़ने का निषेध 'मनुस्मृति' में भी है। ऐसा मुझे काशी के पंडितने बतलाया था। बीस लाख से कम रुपये तुम्हारे पिताजी ने इस धन्धे से न कमाये होंगे?"

"जब से पिताजी ने यह काम शुरू किया है"—गोटेवाले ने बतलाया—"तब से दो मन्दिर बनवाये, तीन धर्मशालाएं और पांच कुएं खोदवाये। काशी के महातपस्वी की आज्ञा से पारसाल वृन्दावन में जो यज्ञ हुआ था उसका भी सारा ख़र्च मेरे पिताजी ही ने बर्दाश्त किया था। पाप-पुण्य के बारे में पिता जी की यह राय कि जीवन तो व्यवसाय है। व्यवसाय में मामूली घाटा कुछ भी महत्त्व नहीं रखता

अगर आगे मुनाफ़ा माकूल हो। इसी तरह आजीवन पाप करने से भी एक बाल बांका नहीं हो सकता—बशर्ते कि पुण्य संचय का परिणाम उचित हो। पुण्य उचित मात्रा में है या नहीं इसका पता लक्ष्मी याने 'सिल्लक' से चल जाता है। पुराने साल के अन्त और नये के आरम्भ के दिन यदि धन्धे में चमकदार बचत हो, तो, बला से बीच में ब्रह्महत्या भी गयी हो, परिणाम पुण्य ही मानना चाहिए। और अंधेरा घाटा-ही-घाटा हो, तो—भले ही रुपये अच्छे कामों में लगे हों— मारवाड़ में गंगा ले जाने के व्यय की तरह-व्यर्थ है।

"तुम तो भाया",—दुग्गड़ ने कहा—"बाप के प्रताप से फोकट में ही मज़े लूटते होगे ?"

"कहाँ भाया ?—वह तो यहाँ तक नहीं चाहते, कि मैं वहाँ जाऊँ। उस जगह का पता तो माताजी से मैंने जाना।"—गोटेवाले ने गम्भीरता से कहा—"सो, ज्योंही मैं वहाँ पहुँचा त्योंही उन्होंने मुझे वहां से निकाल बहार किया। —बिना पाँच हज़ार की रक़म टेंट में रखे मैं अपने बाप को भी न आने दूं, तू तो बेटा ही है।" उन्होंने कहा।

"आज भी अगर उन्होंने निकाल दिया तो ?" कहीं अचानक रस-भंग न हो इस सन्देह से दुग्गड़ ने पूछा।

"आज तो रुपये हैं",—गोटेवाले ने कहा—"मेरे पिताजी रुपये के बारे में इतने कोमल हैं, कि उनका हिस्सा या कमीशन मिल जाए, तो वह मुझे भी कोई भी काम करने से शायद ही टोकें। ब्रह्मसय देखने से आदमी जैसे ब्रह्ममय हो जाता है; वैसे ही, रुपयामय मानने से आदमी रुपयामय भी हो जाता है, उनकी धारणा ऐसी।"

"कोई भी काम से क्या मतलब ?"

"जितने काम भी वहाँ होते हैं ?"

"सुना है, प्राइवेट परिवारों की सुन्दरियां भी माल के मोह में वहां जाकर मलाई-से यौवन का सौदा अलाई-बलाई तक से करती हैं।"

"अजी कोरी-कोरी छोरियाँ !"

"ऐसी बात !"—मारे आवेश के दुग्गड़ ने गोटेवाले के हाथ-से-हाथ मिला लिया—"चल भाया ! आज देखा जाय। मेरी घरवाली ६ महीने से मायके गयी हुई है।"

"मेरी भी"—गोटेवाले ने कहा—"माता जी के साथ वृन्दावन गई हुई है।"

"वृन्दावन तुम अपनी लुगाई को भेजते हो ?"—दुग्गड़ ने आश्चर्य प्रकट किया—"मैं तो मार डालूं, मर जाऊं, पर वृन्दावन युवतियों को हर्गिज़ न भेजूं।"

"क्यों भाया ?"

"भाया ! जान-बूझ कर मूर्ख बनते हैं-शिकारपुरी लोग।"—दुग्गड़ ने कहा—"वृन्दावन में युगों पूर्वसे स्त्रियाँ बहकाई जाती हैं। बूढ़ी स्त्रियां जाएं तो ठीक; पुरुष जाएं, तो बिल्कुल ठीक; पर, नौजवान औरतों को वृन्दाजन हर्गिज़ नहीं भेजना चाहिए।"

"क्योंकि, वह माता बननेवाली थी"—गोटेवाले ने सुनाया—"अतः माता जी भगवान् के दर्शन करा प्रसाद में पौत्र पाने के लोभ से उसे ले गयी हैं। ईश्वर की कृपा से चार महीने पूर्व उनकी इच्छा भी पूर्ण हो गयी। पुत्र ही हुआ मेरी पत्नी को वृन्दावन में! नाम भी 'किसन' माता जी ने रख दिया। इसी महीने के अन्त में आने को इन्होंने लिखा है।"

"तो चल भाया !"—दुग्गड़ ने कहा—"मज़े उड़ाये जायँ। अब तो ६ बजने का वक़्त भी है।"

दोनों दोस्त टैक्सी पर बैठ कर बड़ा बाज़ार आए। वहां, इम्पीरियल बैंक के नाके पर टैक्सीवाले को विदा कर गोटेवाले ने दुग्गड़ को अपने साथ लिया। मल्लिक स्ट्रीट से क्रास कर वह बड़तल्ले में निकला। फिर छोटी और कम प्रकाशित कई गलियों में चकराता रहा। अब एक ऐसी गली में दोनों घुसे जिसमें चिराग़-न-बत्ती—"कार्पोरेशनवाले अन्धे हैं" दुग्गड़ ने कहा—"आखोंवाले होते, तो इस गली के घातक अन्धकार पर भी उनका ध्यान ज़रूर जाता।"

"कार्पोरेशन का ध्यान"—गोटेवाले ने कहा—"इस गली पर जाता तो साल में दस बार पुलीस की ही पूजते-पूजते मेरे पिताजी का दीवाला निकल गया होता। नही तो, तीस बरस में एक लाल पैसा भी जो लाल बाज़ार के हत्थे चढ़ा हो। चुड़ैल की गोद में बच्चा चाहे बच जाय—पिता जी कहते हैं—पर, पुलीस की नज़र में चढ़े हुए धन्धे में बरकत या जान मुमकिन नहीं। इज्ज़त तो और भी नहीं। अतः पुलीस-पूजा से गुण्डा-पूजा कहीं अधिक फलवती होती है। स्वयं उनका पुलीस से लाग होने के सबब ऐसे रात्रि-रोज़गारों की रक्षा बदमाश ही जी-जान से करते हैं। वे जान दें-दें, पर, पुलीस को ज़रूरी जानकारी हर्गिज़ न देंगे। देखा! दूसरों को ले आनेवाले पिताजी के आदमी इस गली में लाकर आंखों पर पट्टी बांध कर आगे ले जाते हैं, पर, क्योंकि मैं साथ हूँ और तू मेरा जिगरी यार है, अतः, साधारण व्यवहार मैं तेरे साथ नही करूंगा।"

अंधेरी गली में कोई चार मिनट तक चलने के बाद उड़िया चाय वाले की एक छोटी सी अदने दीवारगीर के प्रकाशक में टिमटिमाती दूकान नज़र आई। सिगड़ी पर चाय का पानी खौलता, प्याले और

तश्तरियां, टेबल मैले, तीन और कुर्सियाँ मलीन, खटमली, कई। दूकान में घुसते हुए रामअवतार ने उड़िया से कहा—"हमें एक-एक चाय चाहिए।"

उड़िया गंजा, चीमड़, दुबला, लम्बा, गन्दा। पहले उसने दोनों तरुणों को सन्देह से तरेर कर देखा। फिर, रामअवतार को जैसे पहचानते हुए उसने पूछा —"आप? इस दूकान में पांच हज़ार से कम में चाह नहीं मिलती।"

"सो, मुझे बतलाने की जरूरत नहीं। रुपये न होते, तो मैं आता ही नहीं।"—रामअवतार ने कहा—"पर यह तो बतलाओ! अन्दर चाय-ही-चाय है या नमकीन समोसे वगैरह भी? कोई नया माल तैयार होगा?"

"चाय के साथ आज"—उड़िया ने अर्थभरे इशारे से कहा—"आज तो ख़ास तौर से ताज़े-ताजे माल हैं। देसावर से आज ही पार्सल आया है। वह कहता था मथुरा-वृन्दावन से।"

"वह कौन?"

"वही माल सप्लाई करने वाला बड़े बाबू का विश्वासी पुराना आदमी—क्या नाम है?"

"सुलेमान मियां?"

"नहीं, वह तो हिन्दू है। वही, जिसकी मूछें चरी हुई-सी हैं।"

"अच्छा, भैरव भड़भूजा होगा।"

"वही-वही। तीन-तीन तरह के नमकीन माल लाया है। जाइये, देखिए। बड़े बाबू जी भी अभी नहीं हैं।"

"कहाँ गए पिताजी?"

"कोई तार आया था, उसी को लेकर गये थे। बाद में टेलीफ़ोन

आया कि आज वह शायद न आवें। मुनीम जी ने आकर मुझे चेता दिया है, कि बड़े बाबू नहीं हैं, अतः, चौकसी में कोई कमी न हो। आप चले जाइये। आप तो जानते हैं। तीन बार दरवाज़े पर 'टिक' करने से पीछे पहरे पर बैठा बूढ़ा पलटनियां राजपूत दरवाज़ा खोल देगा। जाइये।"

चाय की दूकान की अन्दरवाली कोठरी में दुग्गड़ के साथ घुसते हुए रामअवतार ने कहा—"चलो! अन्धे को क्या चाहिए—दो आंखें। पिता जी नहीं हैं। ख़स कम, जहाँ पाक। हमारे मज़े में विघ्न न पड़े इसलिए वरदान की तरह तार भेज कर काली माई ने पिता जी को टरका दिया। आज खुल कर खेलने का मौक़ा खूब है।"

छोटी-छोटी गन्दी कोठरियों को पार कर जब वे तीसरी में पहुँचे तो कोठरी की पूर्व की दीवार में एक बन्द दरवाज़ा नज़र आया। उसी पर रामअवतार ने तीन बार टिक-टिक-टिक किया। दरवाज़ा खुल गया। खुलते ही दुग्गड़ ने देखा पीछे की तरफ़ वर्दी-साफ़ा-दाढ़ी और बन्दूक़ हाथ में लिए ६ फ़िट से भी ऊंचा कोई राजपूत। आंखें फटी-फटी, लाल-लाल और सरेशाम ही जैसे ऊंघती। उसने गांजा पी रखा होगा देवराज ने सोचा। इन दोनों को अन्दर दाख़िल कर उसने दरवाज़ा बन्द कर ताला जड़ दिया। दुग्गड़ ने गोटेवाले के पीछे चलते हुए पीछे ताक कर देखा। ये दोनों सहन से दूसरे मकान में दाख़िल हुए। फिर, दो-तीन अंधेरी कोठरियों में से चलना पड़ा। फिर, एक सहन और फिर कोठरियां। दुग्गड़ ने सोचा कि क्या वह अभी जिधर से आया है उसी रास्ते लौट भी सकता है? उहुंक! उसे अपनी स्मरण-शक्ति पर भरोसा नहीं हुआ।

इस बार कोठरियां प्रकाशित मिलीं और उनसे आदमियों की बू-बास भी दुग्गड़ को मिली। दो उजेली कोठरियां पार कर ये लोग एक

बड़े हाल में पहुंचे, जिसमें कम-से-कम ७९ आदमी तीन झुंडों में जुआ खेलते नज़र आये। हाल बड़ा होने पर भी कुछ गुम-सा दिखता था। जैसे भूधर या तहख़ाने का वातावरण। देवराज ने सोचा, कि क्या वह तहख़ाने में था ? वहां की हवा में बीड़ी-सिग्रेट-गांजा-चर्स और शराब की गन्धों का तीव्र मिश्रण था। चन्द आदमी चहल-पहल में टहल भी रहे थे—(शायद नौकर-वर्ग) खेलाड़ियों के लिए पानी-पान-पेय प्रस्तुत करते हुये।

"क्या खेलोगे ?"—रामअवतार ने देवराज से पूछा—"तीन तरह के जुए चल रहे हैं। सोरही, रनिंग फ्लाश और कप्तेन।"

"मुझे तो रनिंग फ्लाश ही फलता है"—देवराज ने कहा—"वैसे कौड़ी में भी कमज़ोर नहीं। अलबत्ता, कप्तेन खेलना मुझे नहीं आता। तुम क्या खेलोगे ?"

"कुछ भी नहीं।"—रामअवतार ने कहा—"पिताजी सुनेंगे, तो नाराज़ होंगे। तुम्हीं खेलो। जीत में मेरी भी पत्ती—रुपये में चार आने। मगर, मज़ों में मेरा हिस्सा रुपये में बारह आने !"

"और हार में ?"

"हार में पड़ने के लिए चौथमल जी का पुत्र नहीं पैदा हुआ है।"—अपने तेज़ पिता की पीठ पर बैठ कर रामअवतार हार की ज़िम्मेदारी के मैदान से पत्तेतोड़ भागा।

ताश या रनिंग फ्लाश की मण्डली में देवराज दुग्गड़ को जगह मिलने में देर न लगी। रामअवतार उसके पीछे बैठा। पत्ते बंटे। नोटों के बण्डलों से दांव की रक़में बंटने लगीं और दुग्गड़ जीतने लगा। एक घण्टे के खेल में पत्ते अगर दस बार बंटे, तो दुग्गड़ सात बार जीता। एक ही घण्टे में उसके सामने नोटों के बण्डलों के ढेर लग गए। दस से बारह बजे रात तक देवराज दुग्गड़ ने सवा लाख रुपये जीते और

तब उसने खेल से हाथ खींच लिये —"१२ बजे के पहले ही मेरी आदत सो जाने की है। अब बस।" वह रुपये संभाल-समेट कर उठा, तो उसे लगा कि खेलते-खेलते जो कई पेग शराब पी गया था उसका नशा काफ़ी था। उसे याद आया कि गोटेवाले ने अच्छी-अच्छी औरतों के मिलने की बात भी कही थी।

"क्यों भाया?"—दुग्गड़ ने पूछा—"अब बाहर चला जायगा या कोई और भी डौल है?"

"है न।"—रामअवतार गोटेवाले ने कहा—"जब तक तुम खेल रहे थे तब तक सारा इन्तज़ाम मैंने ठीक करा दिया है। सारी रात के लिए—यहीं बगल में—दो कमरे और दो सुन्दरियां ठीक कर ली गयी हैं।"

"सुन्दरियों को तू ने देख कर सौदा पटाया है या यों ही?"—दुग्गड़ ने पूछा—"ऐन मौक़े पर कहीं सड़ी या गली चीज़ न सामने आ जाए।"

"भरोसा रखो!"—गोटेवाले ने कहा—"साथ ही जीत की रक़म भी मुनीम के पास जमा कर दो। औरतों की फ़ीस दो हज़ार काट कर शेष रक़म कल तुम्हारे यहां ज़रूर पहुँचा दी जाएगी।"

"दो-दो हज़ार की एक या एक-एक की दोनों?"

"एक-एक हज़ार की दोनों। वही जिन्हें वृन्दावन से लेकर वह आदमी आया है जिसकी चर्चा उड़िए ने की थी।"

"तो दोनों ही औरतें मुझे चाहिएँ।"—देवराज दुग्गड़ ने कहा।—"तू अपने लिए तीसरी ढुँढ़वाले।"

"अब आधीरात को तीसरी कहां मिलेगी?"—गोटेवाले ने कहा—"आज तो एक ही से मनोरंजन कर। कल देखा जायगा।"

"नहीं,"—दारू के नशे में देवराज ने कहा—"मुझे दो—चाहियें। ऐसा क्यों न किया जाय कि हम दोनों ही से मिलें ?"

"तब उनकी फ़ीस भी दूनी देनी पड़ेगी,"—गोटेवाले ने कहा—"मैंने पहले ही पूछ लिया था।"

"तो दो-दो हज़ार ही देंगे।"—दुग्गड़ ने यह कह तो दिया, पर, नशे में भी मारवाड़ी-मोलभाव का 'सेन्स' गया नहीं था—"मगर, एक रात—सो भी हद-से-हद चार घण्टों की—और रुपये दो हज़ार ! बहुत होते हैं।"

"कम में उनके साथवाला वह आदमी राज़ी नहीं होता। दो हज़ार रुपया रौंड़ों की फ़ीस बेशक अन्धाधुन्ध जेबकटी है, पर, यह जगह भी कैसी है ? फिर, हम जीतनेवाले हैं। अतः जान बूझ कर, हमसे अधिक चार्ज किया जाना ही चाहिए। पर, एक युक्ति है !"—मुस्कराया उस्ताद चौथमल का पुत्र—"अगर तुझे मंजूर हो—मुझे तो ठग को ठगने या बाजार को बाज़ारभाव बर्तने में बुरा कुछ भी नहीं दिखता।"

"क्या युक्ति?"—पूछा दुग्गड़ ने— "सुनूं भी।"

"मैं कहता हूँ, कोठरियों में अंधेरा कर थोड़ी देर बाद हम कोठरियां बदल लेंगे।"

"यह होगा कैसे ?"

"पेशाब करने के बहाने बाहर आकर काम मज़े में साधा जा सकत है और हज़ार रुपये का मजा मुफ़्त में हम दोनों अलग-अलग ले सकते हैं।"

"युक्ति तो ठीक है, मैं डेढ़ घण्टे बाद बाहर निकलूंगा, उसी वक्त, तू भी निकलना।"

"ठीक—"गोटेवाले ने कहा। साथ ही सावधान किया दुग्गड़ को भी —"मगर, इन औरतों से बातें करने की भी मनाई है। शर्त इतनी

सख़्ती से बरती जाती है कि सभी कमरों में ऐसे यन्त्र लगे हुए हैं जिन में जो बात होती है सब मुस्तैद मुनीम के कमरे में सुनायी देती है। व्यवस्था-भंग होने पर यहाँ के व्यवस्थापक कड़ाई से और बुरी तरह पेश आते हैं। यद्यपि मैं हूँ, पर, मैं भी अपने बाप से डरता हूँ और उनका स्वभाव पैसे पाकर पुत्र को भी कुकर्म कराने का भले ही हो, पर,उनके आगे कुछ करते मुझे न जाने कैसा लगता है। वह होते तो भी माशूक़ों को मैं न छोड़ता, मेरा भी मिजाज़ लड़कपन ही से मौजी है राजा!" उक्त बातों के सिलसिले में भी वे पेग-पेपर-पेग झाड़ते रहे। फिर मुनीम के पास जा, रुपये जमा कर, सधेबधे आदमी के साथ वे निश्चत कोठरियों की तरफ़ चले। वह सधा आदमी वही था जो वृन्दावन से बहका कर नये माल लाया था।

"किस जात की हैं?"

"दोनों पंजाबिनें हैं हुजूर।"—स्त्री-व्यवसायी ने बतलाया—"जो कुछ पूछना हो मुझी से पूछ लें।"—कहा उसने—"उनसे बातें न करने की शर्त सेठ जी को पहले ही सुना दी थी। लाचारी है हूजूर। धन्धा धन्धे ही की तरह करना पड़ता है।"

"हम दोनों कमरों में जाएंगे तो तुम कहां रहोगे?"—दुग्गड़ ने पूछा दल्लाल से।

"यहीं, पहरे पर।"

"रात भर? जी नहीं ऊबेगा? लो!"—दस-दस के दो नोट दुग्गड़ ने उसे दिए—"तुम भी अच्छी तरह खा-पी लो। फिर, जागना या सोना।"

परिणाम यह हुआ, कि दो घण्टे बाद कमरे बदलने के लिए अपने कमरों में अँधेरा कर जब दोनों दोस्त बाहर आये, तब पहरे पर बैठा वह औरत-व्यवसायी घनघोर नशे में खर्राटे भर रहा था। सो, बिना किसी बाधा के दुग्गड़ गोटेवाले के कमरे घुस गया और गोटेवाला दुग्गड़ वाले कमरे में। किसी भी माशूक़ को कोई शुबहा न हुआ।

पर, औरों की आंखों से छिपा हुआ इन कमरों की निगरानी करने वाला कोई और भी था। एक कुबड़ा बदमाश। दुग्गड़ और गोटे-वाले को कमरे बदलते देख और स्त्री-व्यवसायी को बेहोश और शराब से बेक़ाबू जान उसने सीधे मुनीम जी से शिकायत ठोंक दी। पर, तब तक रामअवतार का पिता सागरमल वहां आ गया था। मुनीम चला गया था। सूचना पाते ही सख़्तदिल सागरमल क्रोध से धधकता हुआ उन कोठरियों के सामने आही तो धमका। आते ही उसने औरत-व्यवसायी को कस कर लात जमायी—

"साले, धन्धा करने चला है!"—इसके बाद सागरमल ने उसी दरवाज़े पर तीन थपकियां दीं जिसके अन्दर गोटेवाला था। चमक कर, पलंग छोड़ कर, गोटेवाले ने बिजली जला कर दरवाज़ा खोला, तो सामने उसका भयानक बाप!

"अच्छा! तू है!!"—सागरमल ने घृणा और क्रोध से अपने पुत्र की तरफ़ देखा—"तू मेरे धन्धे में गड़गड़ी करने चला है? मगर मैं छोड़नेवाला नहीं—बेटा नहीं, मेरा बाप ही क्यों न हो। दाम डबल देना होगा।"

रामअवतार भी धुत नशे से निर्लज्ज था। उसने उत्तर दिया—"बाहर जाइये और कर लीजिए डबल चार्ज—चलिए! दाल-भात-में-मूसल चन्द, खीर में मक्खी, न बनिए।"

इसी वक़्त सागरमल की नज़र कमरे की औरत पर पड़ी—"अरे! मीरां?"—और अब रामअवतार ने देखा, कि जिसे वह वेश्या या पराया माल समझ रहा था वह उसी की प्रिय पत्नी है।

"अरे! तुम? मीरां?? यहां??? तुम तो माता जी के साथ वृन्दावन गयी थीं न?"

"मेरे नाथ!"—कह कर मारे ग्लानि और अपमान के रामअवतार

गोटे वाले की औरत उसके क़दमों के पास अन्धड़ से कटी ललित लवंग लता की तरह गिर पड़ी।

और गोटेवाले की न पूछिए। अपनी स्त्री को उस अवस्था में, उस स्थान में देख, उसका नशा जैसा हिरन हुआ वैसा आज तक शायद ही किसी ऐयाश का कभी हुआ हो। पर, उसके प्रचण्ड पापात्मा पिता सागरमल की आंखों से आग की चिनगारियां निकलने लगीं !!

नागरिक नं०–: ६

क्या ? वह बूढ़ा, मगर समर्थ मारवाड़ी अस्सी और तीन तिरासी साल का है जिसे आप आज भी किसी दिन सवेरे गंगातट से सत्यनारायण मन्दिर की राह के बीच अच्छी तरह देख सकते हैं। वह लम्बा है, लरज़ता है, मगर चीमड़ है, चलता है—"मैं कभी बीमार नहीं पड़ा।"—वह कहता है सबको सुना कर सरे-आम—"और जवानी की गदह-पचीसी में एक बार विषम-ज्वर से मरते-मरते बचा था; सो, उसका कारण था धन्धे में मेरा बेईमानी करना। उसके बाद न मैंने कभी बेईमानी की और न बीमार पड़ा। पहले लोग ईमानदार होते थे—ग़म खाते और कम खाते थे। तब इतने लखपति कहां थे जितने आज हैं ? पहले का आर्य सहस्रपति अपने को स-सन्तोष विश्वपति समझता था—सविनय—याने किसी का मालमता देख ललचाने की चर्चा में। इधर आज का लखपति अबाध असन्तोष के कारण भिखारी से भी बदतर है।"

आप पूछें या न पूछें वह चौमुहानी पर खड़ा होकर अपना अनुभव-पूर्ण प्रवचन सुनावेगा ही; नाम उसका छोगालाल जी। उसकी बक और झक से लोग उसे पागल समझते हैं; कुछ तो भिखारी भी; मगर, छोगालाल ४-५ लाख का आसामी है। उसके पुत्र हैं, पौत्र हैं, प्रापर्टी है। तुलापट्टी में बूढ़े छोगालाल की दो दूकानें हैं। एक मसालों की और दूसरी कपड़ों की। दोनों दूकानों पर उसके दोनों पुत्र बैठते हैं। लड़के नेक और आज्ञाकारी, ईमानदार हैं; अतः, बुड्ढा जीवनमुक्त के मज़े लेता है। गंगा नहाना, देव दर्शन करना और जहां भी कथा-कीर्तन हो वहां हाज़िरी देना। इन कामों के बीच में बराबर स्वगत-सम्भाषण तो उसके चलते ही रहते हैं—"सिनेमा मत देखो ! रेस मत खेलो ! नशे की चीज़ों से बचो! फिर न डाक्टर की

ज़रूरत होगी, न सूदख़ोर सेठ की और न अदालत-कचहरी का मुंह देखना पड़ेगा। अपनी पत्नी को छोड़ दूसरे की औरत पर नज़र न डालो! वीर्य बचाओ! ओ नौजवानो! ओ मालेमालो! ओ नौनिहालो! वीर्य बचाओ! वीर्य ही यौवन, बुद्धि और तेज है। वीर्य का अभाव ही बुढ़ापा, अक़्ल का दीवाला याने अच्छे लाला के भी मुंह का कोयला-काला होना है। पहले के लोग ब्लैक नहीं करते थे, अतः उनके चेहरों पर तेज रहता था। अब तो जिधर देखो उधर कल्लू-ही-कल्लू।"

और वह कोई पुराना पद मनोमोहक मौके पर चस्पां कर भोंपू-भव्य-कण्ठ से गाने लगता है, जैसे—

कोई साफ़ न देखा दिल का!
सांचा बना झिलमिल का!
कोई बगला कोई बिल्ली देखी धरे फ़क़ीरी खिलका,
ऊपर गोरा ज्ञान छाँटते, अन्दर कोरा छिलका!
राम भजन में बड़े आलसी, मानो मरा मंज़िल का,
औरन को पीसने में सुरवाँ, पटतर लोढ़ा-सिलका!
पढ़े-लिखे कुछ ऐसे-तैसे बड़ा घमण्ड अकिल का,
ज़हरी सखुने मुख से बोलें, मसल साँप के बिल का!
कोई साफ़ न देखा दिल का!
साँचा बना झिलमिल का!!

"बगले कौन हैं?"— गाने के बाद ललकार कर वह अर्थ भी समझाता है—"बगले हैं वे जो गंगातट पर ध्यानावस्थित दिखने पर भी मीनाक्षी ही की ताक में रहते हैं। मुंह में राम है जिनके और बग़ल में छुरी। कोई बगला कोई बिल्ली देखी—यह बिल्ली कौन है? वही चर्बीली, चटकीली, मस्त महा-औरतें, बनी भगतिनें, जिन पर कहावत बनी है—चौदह चूहे खाय के बिलारी चली हज के! एक गीत मैंने भी बनाया है" चली री चटकिलिया गंगा नहाय!— वह पुनः

भोंपू-भव्य स्वरालाप शुरू कर देता। और लड़के ही मज़ा आ जाता है। लड़के उसे घेर लेते हैं, 'बड़के' झेंप कर मुँह फेर लेते हैं। लड़के नक़लची, उसके 'स्लोगन' नाटकीय ढंग से दुहराने लगते हैं —

"सिनेमा मत देखो! रेस मत खेलो! नशेकी वस्तुओं से बचो! ओ नौजवानो! ओ नौनिहालो!"

बूढ़े छोगालाल जी को अर्ध-विक्षिप्त मान कर भी बाज़ारवाले आदर की नज़र से देखते हैं। सिनेमा के सुधार का ध्यान भी जब सरकार को नहीं था तब से छोगालाल जी उसका विरोध करते आ रहे हैं। पचीसों वर्षों से कलकत्ते जैसे शहर के दुष्ट समाज को निर्भयता से नीति-उपदेश नित्य नियम से देते आ रहे हैं। पुरस्कार या तिरस्कार के लोभ या भय से विरहित।

एक दिन बूढ़ा छोगालाल जी जब हरिसन रोड, इम्पीरियल बैंक के पास से नारे लगाते हुए गुज़ारा तो, मलिक स्ट्रीट के नाकेवाले अख़बार की दूकान पर खड़े कई सुफ़ेद-पोश उसकी प्रशंसा करने लगे–

"इस आदमी को सरकार की तरफ़ से पेन्शन मिलनी चाहिये। एक युग से बराबर लोगों के कानों में यह नेक आदमी नेक सलाह ही डालता आ रहा है।"--एक अध्यापकने अपना अभिमत प्रकट किया।

"अरे यह खुद मालदार है।"—अख़बारवाले अपनी जानकारी जाहिर की थी"– दो-दो दुकानें हैं, पुत्र हैं, पोते हैं। लेकिन है अहद का पक्का आदमी। गर्मी-सर्दी-बरसात कोई भी मौसम हो यह बराबर जनता को अच्छी बातें ही बतलाया करता है।"

"पर कोई सुनता है?"—एक मारवाड़ी तरुण ने कहा—मुँह मिला है, बको। पर, कौन सिनेमा देखना छोड़ता है? मज़ों से दूर रहना चाहता कौन है?"

"और फिर भी"—किसी गुजराती ने आम विवाद में राय दी– "शहर में ध्यान से गिनिये, कि मज़ों की जगहें ज़्यादा हैं या विविध

रोगों के चिकित्सालय, औषाधालय, तो तेल की धार का पता चल जायगा। सच पूछो भाई! तो मजे, हैं कहाँ? भोगे रोगभयम् किसी पागल का नहीं महाकवि भर्तृहरि का लिखा है।"

"भर्तृहरि ने जब के लिए लिखा था वह ज़माना दूर लद गया। —तरुण मारवाड़ी ने कहा"— आज का दर्शन बाज़ार पर आधारित और बाज़ार भोग्य-वस्तुओं पर। फिर उसमें रोगभयं हो या वियोगभयम्।"

"परिणाम क्या है, सो तो देखो"—गुजराती ने कहा —" परम स्वतन्त्र होकर मानव समाज भगवान् को भूल भोगरत हो तो गया, पर, वह भोग क्या रहा है? सुख? या दुख? यह भी तो देखना होगा? भोग मोहक हैं? ना कौन करेगा? पर उनसे आदमी सत्य से दूर हो जाता है, याने सिद्धि, सफलता, 'सक्सेस' से दूर।"

"साहब!" अख़बार वाले ने कहा— "अख़बार ख़रीदते हुए आप लोग बातें करें तो ठीक। नहीं, बिकरी के वक्त फोकटी, भीड़ मेरे धन्धे को रौंद डालेगी। फिर तो भोग या योग दोनों ही मेरे लिये रोग या सोग बन जायेंगे।"

और लोग अख़बारवाले की आशु कविता पर कलकल हंस पड़े।

तीन बटे तेरह ! : ७

चितपुर रोड की तरफ़ से बड़तल्ले में कुछ दूर जाने पर सीता-माता स्ट्रीट पड़ती है, हमने लिखा है। उसी में वह विचित्र मकान नं० ३ बटे १३; जिसका परम विचित्र मालिक मशहूर सेठ घीसालाल है। मकान के तीसरे तले पर जब दखिना पवन प्रवाहित रहता है प्राण-स्पर्शी—तब दरबान और पहरेदारों के निवास-स्थान निचले तले में दम घुटता रहता है, मकानों की कतारों और मोटी दीवारों में हवा का गुज़ार न होने के सबब ! निचले खण्ड में सील बहुत, अंधेरा बहुत, गन्दगी बहुत। घीसालाल निचले खण्ड के गोदामों के बीचवाले अपने निजी कमरे में रोज़ ही जाता और घण्टों जाने क्या किया करता। पर, निचले खण्ड की सफ़ाई की ज़रूरत दरबान के कहने पर उसे न महसूस होती। तीसरे और दूसरे तलों के बेपर्वाह लोग रोज़ ही कूड़ा-कचरा नीचे फेंक देते थे जो महीनों आंगन में पड़ा रहता ! घीसालाल कचरे को रौंदता हुआ रोज़ आफ़िस जाता, पर, उसमें उसे कुछ अस्वाभाविक न मालूम पड़ता। जैसे मछ-मार को बदबू में।

रहा बिचला खण्ड, सो, उसकी दुर्दशा का वर्णन करना सहज नहीं। परिवार रहते पन्द्रह, पर, पाख़ाना ऊपर एक नहीं। और न नल ही। इनकी व्यवस्था नीचे, जहां आंगन में महीने में २६ दिन गन्दगी रहती। जलकल के बहुत निकट एक दर्जन टट्टियां टूटी। भंगी नज़दीक रहने पर भी सफ़ाई से उदास। भंगी का कहना कि "लोगों को टट्टी फिरने का भी शऊर नहीं। साफ़ करते ही गन्दी कर डालते हैं। टंकी की ज़न्जीर इतनी खींचेंगे, कि बेटूटे बचे ही नहीं। पब्लिक-जगहों की सफ़ाई तो तभी रह सकती है जब सबको फ़िक्र हो। मैं कहां तक साफ़ करूं ?"

बिचला खण्ड देखने से लगता, कि अस्तित्व में आने के बाद फिर उसे कभी चूना-कलई का मुंह देखने की नौबत आई ही नहीं। दीवरा पर गर्द और धुंए का आयल पेंटिंग से भी पुख्ता रंग तथा आदमी की पहुँच तक की ऊंचाई में टेढ़े-मेढ़े चित्र, पान की पीक, चूने के चिन्ह,

सूखी थूक या नाक की रेंट चमकती बीभत्स चारों ओर। फुटपाथ पर सोने वाले कंगलों के मुंह की तरह मैले दरवाज़े। क्या मजाल कि बिना दो-चार तिलचट्टे कुचले, घृणा से कांपे-सिहरे, कोई आदमी मकानके उस तले से गुज़र जाय। निचले खण्ड में हवा या रोशनी बिल्कुल नहीं, बिचले खण्ड में हवा, रोशनी भी; पर, रौशनी में नज़र आता घृणित वातावरण, हवा में भरी गन्द, विषाक्त-कीटाणु! बिचले खण्ड में २—४ कमरे जो साफ़ नज़र आते थे, सो, मकान मालिक की अनुकम्पा से नहीं, बल्कि कमरा-विशेष के भाड़ैतों के झखमार कर किए हुए व्यय से। स्वच्छ वायु में बसने का आदी यदि एकाएक ३ घंटे १३ के निचले खण्ड में आ रहता तो बेहोश हो जाता और बिचले में बीमार। फिर भी, वहां के भाड़ैतों को न तो कभी किसी ने बेहोश होते देखा और न बीमार होने के भय से भागते ही सुना।

निचले खण्ड की विषैली हवा में पलटू दूबे दरबान का पहलवान पुत्र डेढ़ हज़ार डण्ड मार कर उतनी ही बैठकें लगाता था— नित्य नेमसे; और बिचले तले में तो ग़रीब परिवारियों के दुधमुहें बच्चे तक बड़ों की ग़रीबी और समाज की मलीन मूर्खता से नरकवास करते थे, स्वर्गीय प्रसन्नता से। घीसालाल अभागे भाड़ैतों से मकान भाड़ा बड़ी बेरहमी से वसूल करता था। पुलिस या अदालत की मदद से नहीं; दरबान और गुण्डों की सहायता से, गालियों से, मार से, भाड़ैत का सामान निर्दयता से बाहर फिकवा देने से। बरसों के पुराने भाड़ैत को अक्सर घीसालाल यों निकाल बाहर करता था जैसे भाड़ैत की न तो कोई इज़्ज़त हो और न न्याय पाने का अधिकार। सारा कलकत्ता जानता है, घीसालाल की भाड़ा-वसूली का कसाई-कठोर क़ायदा। पर, हिन्दुस्तान में जैसे अपनी औरत को सतानेवाले के विरुद्ध मुंह खोलना मुमकिन नहीं; वैसे ही, बुरे मकान-मालिकों से दूसरा कोई कुछ कह नहीं सकता।

एक ही मकान का निचला खण्ड नरक, बिचला मृत्यु लोक, और तीसरा खण्ड—जिसमें स्वयं मकान मालिक रहता—सरासर स्वर्ग था!

तीसरे मंज़िल की सीढ़ियों की दीवारों से ही ताज़े आयल पेंटिंग का सुरम्य सिलसिला, कमरों की आधी दीवारें 'मोज़क' मोहक की, फ़र्श मारबल के, पाख़ानों में चीनी-मिट्टी के मोहक प्लेट मढ़े। कमरे बड़े-बड़े बारह, रहनेवाला अक्सर एक! वही घीसालाल। घीसालाल अपने अलावा अगर कभी किसी और को रहने भी देता, तो वह थी—उसकी प्रिय पुत्री पार्वती बाई। नहीं तो, विविध बाज़ारी विलासिनी स्त्रियों को भी विदा कर देने के बाद ही वह सोता था! नौकर या नौकरानी तक को वह रात में तिमंज़िले पर नहीं रखता था। ऊपर बारह कमरों में एक आदमी रहता और नीचे एक-एक कमरे में बारह-बारह आदमी। देखो तो! मारवाड़ी ऊपर भी रहता, नीचे भी; पर, ऊपरवाले का भाग्य सोंधे मक्खन की तरह तो नीचेवालों का फीके पानी की तरह! रंग मठ का।

घीसालाल ऊपर अकेले ही क्यों सोता है? इस बात को लेकर घर और बाहरवाले विविध अन्दाज़े लगाते। कोई कहता, कि वह अपनी कामुकता का कम-से-कम विज्ञापन करने के लिए ही अकेले रहता है। दूसरे कहते, कि घीसालाल काफ़ी सोना-चांदी और रत्नादि ऊपर रखता है, अतः किसी को नज़दीक नहीं रहने देता।

मगर, पुराने, बूढ़े, खांसते, दरबान पलटू दुबे की 'प्राइवेट' राय कुछ और ही थी। 'प्राइवेट' यों कि उक्त राय पलटू दुबे फुसफुसा कर सुनाता है। सो भी सब को नहीं, केवल मिर्ज़ापुरियों—अपने ज़िला बन्धुओं को। पलटू दुबे के अनुसार—"सेठ अपने प्राणों के भय से अकेले सोते हैं। चारोंओर के दरवाज़े-खिड़कियां अच्छी तरह से बन्द करके। बन्द खिड़कियों के नीचे एक-पर-दूसरी इस तरह सैकड़ों किताबें सेठ इसलिए रखते हैं, कि कदाचित् कोई खिड़की खोल भी ले, तो किताबों के गिरने के धमाके से शत्रु की सूचना सपने भी उन्हें मिल जाए और वह सजग हो जाए। जैसे कोई हत्यारा अपने प्राणों को डरे और चारोंओर संकट-ही-संकट देखे वही गति सेठ घीसालाल की है।"

६³/₃ नम्बर के प्रायः सभी किरायदारों को पलटू दुबे ने ही बतलाया था कि मकान में प्रेत का निवास निश्चित है। गुट्ठल, काला, छुरों से छिदा हुआ प्रेत पहले पलटू को ही नज़र आया था। फिर,बूढ़ी भंगिन को। बाद में तो तीन बटे तेरह की सभी स्त्रियों और अनेक पुरुषों को भी वही प्रेत सपने में भयानक नज़र आया था।

असिल में पलटू दुबे की अरुण जवानी घीसालाल की सेवा और रक्षा में चौपट हो गयी थी। वह उसके बाप का रखाया हुआ दर-बान था। घीसालाल के परिवार की अनेक मुश्किलें उसने आसान की थीं। निहायत कम मज़दूरी में। घीसालाल का पिता क्या था, था क्या पितामह, यह सब पलटू दुबे से छिपा नहीं था। इतना ही नहीं, लोगों की धारणा तो यहां तक थी, कि युगों तक पलटू दुबे घीसालाल मारवाड़ी का दाहिना हाथ रह चुका है। ऐसा विश्वस्त आदमी जिसने सारी ज़िन्दगी लाखों रुपये गद्दी से बैंक और बैंक से गद्दी सुरक्षित पहुँचाये। जिसके हाथ से कभी कोई नुक़सान नहीं हुआ। पर, इधर अधिक वृद्ध होजाने और दमे का रोग होने से पलटू में वह ताक़त न रही। सो, देखो तो घीसालाल को! उसने उस पुराने नमक-हलाल दरबान को यों चित्त से उतार दिया है, जैसे वेश्या दुर्बल या या दरिद्र देख कर अपने यार से आंखें फेर ले।

"अब तुम बाल-बच्चों में जाकर आराम करो दुबे।"—पैंसठ वर्षीय दुर्बल दरबान से एकसठ वर्षीय मालमार-रोज़गारी बोला—"सम्भव है, मिर्ज़ापुर की हवा अधिक माफ़िक आवे और तुम अच्छे हो जाओ। रुपये न हों, तो, जब सारी दुनिया को सूद लेकर मैं कर्ज़ देता हूँ, तो तुम तो अपने ही आदमी हो। पचास, सौ, दो सौ जब चाहो लेकर घर चले जाओ।"

पलटू दुबे घीसालाल की तोतेचश्मी या मतलब निकल जाने बाद मारवाड़ी सेठ की मशहूर 'मन्दमिजाज़ता' देख, मन-ही-मन जल-भुन गया। पर, उस भाव को छिपाते हुए खुर्राट मिर्ज़ापुरी ने अपने

लड़के स्वामीनाथ दुबे की सिफ़ारिश की—"खड़ी जवानी में जैसे मैं था"—उसने कहा—"वैसा ही इस वक़्त वह है—पूरा पहलवान। मैं उसे आज ही लिखता हूँ। हद-से-हद ५–७ दिन में वह हाज़िर हो जाएगा।"

इस तरह निज का रस निकल जाने के बाद पलटू दुबे ने पूंजी-पति के कोल्हू में अपने लख़्तेजिगर को, तिल-तिल पिलने के लिए जोत डाला। क्या जाने क्या समझ कर घीसालाल ने पलटू दुबे को १५ रु० माहवार पेन्शन कर दी। दुबे की तनख़्वाह ३५ से शुरू हो सारे जीवन ७५ के आगे न पहुँच पाई थी। दुबे के देखते-देखते घीसा-लाल लखपति से करोड़पति हो गया था। रुपये पचासों लाख दुबे के हाथों इधर-से-उधर हुए, पर, वह अभागे-का-अभागा ही रहा। 'कबहु न उदर भरो।'

और इतने पर भी सारी ज़िन्दगी पण्डित के मन में कभी यह अविवेक नहीं जागा, कि मौक़ा साधकर गहरी रक़म रपेट कर भाग जाता। और परिणाम में हद-से-हद दो--चार साल की सज़ा काटने के बाद सारी ज़िन्दगी मज़े में काटता—"जो अपने भाग्य में बदा ही नहीं,"—दुबे सोचता—"उसके लिए ललचाना मर्द का काम नहीं। ब्राह्मण का तो और भी नहीं।" मगर, जब दुबे को १५ रु० पेन्शन दी घीसालाल ने तो दरबान की तनख़्वाह ७५ से साठ कर दी। पब उसको ऐसे मक्खीचूस की सेवा में सारी ज़िन्दगी गुज़ारने का बड़ा सदमा हुआ। घीसालाल के इस काम को उसने इतना असंस्कृत समझा कि विरोध करना भी अपनी शालीनता के खिलाफ़ माना। पर, मन उसका सेठ की तरफ़ से खट्टा हो गया। अब तक सेठ का विकास चाहने वाला उसके दानवी धक्के से दहल कर सोचने लगा कि विकास अगर ऐसों का होगा, तो सत्यानाश किस का होगा? ब्राह्मण कल तक पसीने की जगह खून देकर भी ग़लत आशिर्वाद क्यों देता था? पलटू दुबे की हाथी-सी देह घीसालाल की सेवा में घुल कर मि: हो गयी। गद्दी पर बैठ कर बेईमान ने जिस लक्ष्मी का आह्वान किया

था वह पलटू दुबे के कन्धे पर बैठ कर ही तो उस के घर आयी थी। मगर, देखिए तो! कन्धे टूटे पलटू दुबे के और करोड़ों जुटे घीसालाल के। 'पौन बढ़ावत आग को दीपहिं देत बुझाय' पलटू ने बड़े खेद से एक दिन अपने पहलवान पुत्र नये दरबान स्वामीनाथ से कहा—"बिना बेईमानी रुपया जुट नहीं सकता। घीसालाल बेईमानी करता है, तो करोड़पति है। इधर मैं ईमानदारी के फेर में भिखारी का भिखारी ही रह गया। एक दिन गद्दी से बैंक रुपये न ले जाकर मिर्ज़ापुर चला गया होता, तो, आज यह हालत न होती, कि दमे से मरता—बिना दवा! घीसालाल जैसे चरित्रहीन की सेवा चरित्र और ईमान से करने का यही उचित दण्ड है।"

पिता को करुण पछताते देख पहलवान पुत्र स्वामीनाथ गम्भीर हो गया। उसे ऐसा लगा गोया उसके पूज्य और वृद्ध पिता के कष्टों के कारण पहले तो चरित्र और ईमान हैं, और फिर हैं—सेठ घीसालाल जिसका कि वह नव-नियुक्त दरबान है। मुंह से स्वमीनाथ एक शब्द नहीं बोला, पर, भाव से उसके ऐसा व्यक्त हुआ कि चरित्र, ईमान और घीसालाल से कैफ़ीयत तलब किए बग़ैर उसे शान्ति नहीं होगी।

असिल में पलटू जो था, स्वामीनाथ वह नहीं था। पलटू जितना ही सीधा था, स्वामीनाथ उतना ही बांका। पलटू सारी जिन्दगी कठिनाइयों से लड़ कर चार पैसे कमाता था। मगर, स्वामीनाथ बाप की कमाई से गांव में दूध-मलाई खा, दण्ड पेल, मुस्टण्ड पहलवान, उद्दण्ड नौजवान था। पलटू को पता नहीं, कि उसके पुत्र का नाम मिर्ज़ापुर पुलिस की डायरी में सन्दिग्ध, अवांछितों में आ गया था। क्योंकि, स्वामीनाथ का संग गद्दरे गुण्डे, शातिर बदमाशों का था।

यह है मिर्ज़ापुर—:८

इतावर का दिन, समय सन्ध्या ५ बजे। ३/९३ के निचले खण्ड में नल और पाखानों की उत्तरओर के बरामदे से दरबान और पहरेदार वर्ग के १४—१५ आदमी भंग-ठंडाई घोटते, गप्पे मार रहे थे। हल्ला न हो अतएव वे धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। पर. क्या धीरे ! मालूम पड़ता था, भेड़िए, चीते, या शेर दहाड़ रहे हैं। उनमें से ज़्यादातर आदमी क़सरती, गठीले और कड़े नज़र आ रहे थे। एकत्र पुरबियों में कुछ उत्तर प्रदेश के थे और बाकी बिहार के। सामने नल पर बिचले खण्ड की मारवाड़ी औरतें घड़े मांज या पानी भर रही थीं। उनमें पहले परिच्छेद में आयीं सभी औरतें थीं। याने शुभकरण दलाल की स्त्री, प्रहलाद घीवाले की पत्नी, मोहनलाल मुनीम की माता, मृत महाराज की लुगाई राधा बाई, तथा जोधा पापड़वाले की औरत। नल पर उस वक्त सभी औरतें ही थीं, सिवा एक अधेड़ मारवाड़ी के जो शायद बिचले खण्ड में किसी के यहां मेहमान आया था। वह मूर्ख शायद टट्टी जाने या नहाने को नीचे आया था, पर, घण्टों तक हाथ में लोटा लिए नल के निकट खड़ा औरतों को गुरेरता ही रहा ! ख़ास कर मृत महाराज की युवती विधवा राधा को। यह सारी लीला सामने ठण्डाई तैयार करनेवाले पुरबियों की निगाहों से भी छिप न सकी।

"कौन है यह आदमी ?"—छपरा के रामसिंहासन सिंह ने स्वामीनाथ से पूछा—"देखता हूँ, घंटे भर से यह औरतों को ही गुरेर रहा है।"

"होगा कोई मारवाड़ी"—स्वामीनाथ ने कहा—"कहो तो लगाऊँ साले को दो-चार धौल !"

"छोड़ो भी"—इटावे के रामचरन मिश्र ने कहा—"कलकत्ते में बाल-बच्चों से दूर रहने के सबब औरतों के लिए लोग 'भुखाये'—से रहते हैं, आँखों से ही खा जाने की ताक में। फिर, पचीस साल से मैं देख रहा हूँ, मारवाड़ी समाज को स्त्रियों की तरफ़ सबसे बुरे ढंग से अगर कोई ताकता है, तो मारवाड़ी। सौदा ख़रीदते, सड़क पर चलते, मन्दिर और गंगा तट के निकट मारवाड़ी जिस इत्मीनान से औरतों की तरफ़ घूरता है उसी की बानगी यह आदमी भी दिखा रहा है। कहावत है न कि—लंका में कोई भी ५१ हाथ नहीं, सभी ५२ हत्थे। यह लो! गौरी दादा आ रहे हैं। ये औरतों को गुरेरनेवालों पर फ़ौरन हाथ छोड़ते हैं। अगर इनकी नज़र उस पर पड़ी, तो ख़ैरियत नहीं। लो! उन्होंने देखा हो! मरा साला—!"

ठण्डाई छानते पुरबियों ने सुना गौरी दादा को उससे तीव्र पूछ-ताछ करते—"यहाँ क्या करता है रे?"

"ये! रे-रे काहे करता है?"—मारवाड़ी कुछ कड़ा पड़ा।

"अबे भुतनी के!"—तड़ातड़-थप्पड़ जड़ चला गौरी—"अपनी माँ-बहनों को ताकते तुझे शर्म नहीं लगती? तिस पर कहता है कि रें-रें क्यों करता है? भाग यहाँ से! नहीं तो मारते-मारते मार ही डालूँगा।"

फिर तो, मारवाड़ी ऐसे भागा जैसे मार्जार को गन्ध से मूषक!

"जाने दो गौरी दादा!"—रामचरन मिश्र ने कहा—"कलकत्ते जैसे शहर में कितने लोगों को दंड दोगे? कुएँ में ही भंग पड़ी हुई है। यह शहर ही सत्य या सतीत्व का नहीं मालूम पड़ता!"

"सच कहा मिसिर तुमने!"—गौरी दादा ने कहा—"पर हर-मज़दगी मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। यह तो छिपकली बनिया था—अपने को बारहा लगानेवाला भी मेरे सामने स्त्रियों की मर्यादा मलीन करे, तो बिना मारे न छोड़ूँ।"

"गौरी दादा फट-से हाथ छोड़ते हैं !"—रामसिंहासन सिंह ने कहा—"कोई हो। कई बार स्त्रियों के प्रति असभ्य व्यवहार करने वाले कानिस्टबिलों, सारजंटों तक को गौरी दादा ने पीट-पीट कर 'पसरा' दिया था।"

"ब्रह्मचर्य जो नहीं रखता"—गौरी ने कहा—"उससे मैं घृणा करता हूँ, मैं नोट बनाता हूँ, डाके डालता हूँ, ख़ून करता हूँ, पर, औरतबाज़ी से परहेज़ करता हूँ, बचता हूँ। क्योंकि, ब्रह्मचर्य से ही सारे काम होते हैं और वीर्य की कमी से ही बिगड़ते हैं !"

"अभी भी डाके डालते हो दादा ?"—स्वामीनाथ ने उत्सुकता से पूछा—"अब तो तुम्हारे पास, भगवान् की कृपा से, सब कुछ है। पक्का मकान, खेत-खलिहान, बेटे, बेटियाँ, पोते, नाती, फिर अब डाके डालने की क्या ज़रूरत ? ख़ास कर इस उम्र में ?"

"जब तक पौरुख चले"—गौरी दादा ने कहा—"तब तक बैठ कर खाना काहिलों का काम है, गौरी दादा का नहीं ! लड़के-लड़कियाँ होंगी अपने लिए। लेकिन निज को छोड़ आदमी का निजी यहाँ कुछ भी नहीं। इसलिए समझदार आदमी को रोज़-रोज़ कुंआ खोद कर ही पानी पीना चाहिए। इसीलिए इस उम्र में भी मैं 'काम' बंद नहीं करता। हाथ-पर-हाथ रख कर जिस दिन गौरी दादा बैठे, उसी दिन 'राम नाम सत्य, सुन लेना !"

"मगर, यह डाकुओं का कर्म"—"स्वामीनाथ जुम्ला पूरा न कर पाया था कि उसका बाप पलटू दुबे बिगड़ा उस पर—"क्यों बड़ों के मुंह लगाता है ? माफ़ करना गौरी भैया !"—पलटू ने गौरी दादा को चिकनाया —"आज के लड़के मुंहज़ोर इतने होगए हैं, कि न छोटे का लिहाज़ करते हैं न बड़े का।"

"कोई बुरी बात तो नहीं कर रहा है लड़का पलटू भाई"—गौरी ने गम्भीरता से कहा—"ऐसी ही बातें मुझे से समझ के सभी ठेकेदार

करते हैं। इस उम्र में मैं डाका क्यों डालता हूँ और शान्ति से, मिर्ज़ापुर ज़िले के अपने गाँव में बैठ कर सीताराम क्यों नहीं करता? वैरागी साधु क्यों नहीं बन जाता? मेरा ख़याल है, लोग बिना सोचे-समझे बातें बक जाते हैं। तुम मुझे डाकू कहते हो, ठीक है, मैंने कभी इन्कार नहीं किया? मामूली आदमी ही से नहीं, अदालत, जज तक से।

"हत्या के एक केस में जज ने जब मुझसे पूछा कि क्या यह हत्या तुमने की है? तो मैंने जवाब दिया था—हत्या? ग़रीबपरवरमैं रोज़ ही डाके डालता, रोज़ ही हत्या की हवा में विचारता हूँ; पर, यह खून मेरा किया हुआ नहीं है। और ग़रीबपरवर! डाके भी—लुकछिप कर नहीं—दिनों पहले सन्देशा भेज या चिट्ठी दे, मतलब ललकार कर डालता हूँ।"

"डाके आप क्यों डालते हैं?"—पुरानी घटना की याद की प्रसन्नता गौरी के चेहरे पर चमक उठी— "जज साहब ने मुझे आप कहा था। बड़ों की बड़ी बातें! मैंने कहा— ग़रीबपरवर, यह जीवट, जानजोखों का धन्धा है, इसीलिए मुझे पसन्द है! शेरों का रोज़गार! ऐरे-ग़ैरे-नत्थूखैरे, लेंडी-गुच्ची डाकुओं का काम नहीं कर सकते। और पलटू भाई!—" गौरी ने कहा —"बजरंगबली का स्मरण कर मैंने जो जज की आंखों से आखें मिलायीं तो उसकी आंखें चश्मों में चौंधिया गईं। जज ने मुझे रिहा कर दिया। वेल, ठाकुर गौरी सिंह! आप सच्चे आदमी हैं। मैं रिहा करता हूं।"

"अरे गौरी भाई, जो तुम्हारी शूरता न जानता हो उसे सुनाओ!" —पलटू दुबे ने गौरी के बाद औरों को सुनाया— "ठाकुर गौरी सह काबुल, कराची, रंगून, कन्याकुमारी कहां नहीं गए हुए हैं! यह अपनी जीवनी सुनाने लगें तो हैरत के मारे श्रोता सन्नाटे में आ जाएं। अरे ये राम लखन! पहले ठाकुर साहब को ठंडाई दे!"

"नहीं, नहीं महाराज !" गौरी ने हाथ जोड़ कर कहा—"अग्रे-अग्रे विप्राणाम् !"

"अरे ठाकुर, तुम अतिथि हो।"— पलटू दुबे फिर भी पंडित ही था—"मनु महाराज ने अतिथि को देवता कहा है।"— पलटू ने औरों को बतलाया— कि ठाकुर गौरी सिंह हमेशा से ब्राह्मणों के भक्त रहे हैं !

"आज तक मैंने न तो कभी ब्राह्मण पर हाथ उठाया"— गौरी ने सहज भाव से सुनाया— "और न कभी उनकी सम्पत्ति ही लूटी। सुर, महिसुर, हरिजन अरु गाई' हमरे कुल इन पर न सुराई। हम क्षत्रिय हैं और ब्राह्मण को बड़ा मानने में ही विजय मानते हैं।"

और ब्राह्मण डाकू हो—तो दादा ?"—अब तक चुप खड़े एक तगड़े दरबान ने पूछा।

"अरे महाराज !"—गौरी ने कहा—"बाल्मीकि ब्राह्मण थे और रामायण लिखने के पहले निरच्छर भट्टाचार्य ही नहीं हत्यारे और डाकू भी थे। काम कोई भी बुरा नहीं, बुरी होती है नीयत ! ब्राह्मण वेश्यागामी, परस्त्री-स्वामी हो, निस्तेज, निर्वीर्य हो, तो मैं उसे मार तक डालूँ; लेकिन ईमानदारी से किसी भी धन्धे से ज़िन्दगी बसर करनेवाले ब्राह्मण को मैं क्षत्रिय का गुरू मानता हूं ! मिर्ज़ापुर ज़िले में एक-से-एक फ़ौलादी ब्राह्मण बल-व्यवसायी पहले भी होते थे, आज भी हैं !"

"गिरजा गुंडा और संखासुर गुंडा ब्राह्मण ही थे न दादा ?"—उसी तगड़े तरुण ने पुनः पूछा।

"संखासुर गुंडा ब्राह्मण नहीं था !"—गौरी ने कहा—"पर गिरिजा महाराज ब्राह्मण थे ! बड़े जीवट के लोग थे ! मिर्ज़ापुर की पुलिस गिरिजा के नाम से कांपती थी ! पुलिस की लाल पगड़ी देखते ही

गिरिजा महाराज की आँखों में खून उतर आता था ! एक ही धड़ाके में वह पुलिस की पगड़ी पृथ्वी पर सुला देते थे ! सैकड़ों पुलिसके बीचमें से हाथ में चमकती भुजाली नचाते गिरिजा महाराज ऐसे निकल जाते थे छुरा जैसे चीर कर तरबूज ! गिरिजा पंडित बहादुर थे ! पर, वेश्याबाज़ी, निर्वीर्यता, उन्हें ले डूबी ! मिर्ज़ापुर में वेश्या के घर में पुलिसवालों ने जब उन्हें घेर लिया, तब गिरिजा ने औरतों की पोशाक पहन ली मूछोंवाले होकर ! और करो रंडीबाज़ी ! मगर पुलिस वाले एक ताड़, तड़ाक से ताड़ गए। गिरिजा पंडित पकड़ लिए गए। फिर तो, उसी जनाने वेश में सारे शहर में घुमा-घुमा कर अनाचारी बलव्यवसायी ब्राह्मण को पुलिस ने जूतों से पीटा ! यह है निर्वीर्य होने का नतीजा ! क्यों ? आपको मैंने कहीं देखा है ?"— गौरी ने उस आदमी से पूछा जिसने गिरिजा गुंडे का प्रसंग छेड़ा था—"मगर नहीं, आपको नहीं देखा। भूल हुई पहचानने में !"

ठंडाई छानने के बाद 'खैनी' तैयार हुई ! मगर गौरी सिंह निबटने के फेर में न पड़ा ! पलटू दुबे के पास बैठ कर बातें करने लगा !

"यह आदमी कौन है ? पलटू महाराज !"

"मुझे मालूम नहीं"—पलटू ने कहा"— स्वामीनाथ का दोस्त होगा। होगा कोई दरबान-चपरासी !

"मुझे शक है।"

"क्या ?"

"उसकी रान में गोली का चिन्ह है। टट्टी जाने के पहले उसने जब गमछा पहना तब मेरा माथा ठनका। उससे बातें करते ही मुझे शक हुआ था, पर गोली का दाग़ और उसकी फौलादी देह देख कर सन्देह आता रहा !"

"कौन है वह ?"—पूछा उत्सुक पलटू ने !

"वही जिसके माथे पर यू० पी० की पुलिस ने २००० पुरस्कार की घोषणा कर रखी है।"—गौरी ने सगर्व कहा—"अगर पहचानने में भूल नहीं कर रहा, तो यही आज कल मिर्ज़ापुर के सबसे बड़े बल-व्यवसायी गुंडे हैं। इन्होंने सरे बाज़ार कोतवाल पुलिस की पिस्तौल छीन कर उसको गोली से उड़ा दिया था।"

"ऐसों की संगत करता है मेरा लड़का !"—साश्चर्य, सखेद पलटू दुबे ने कहा—"ऐसे आदमी को यहां बुलाना ही नहीं चाहिए था। और बुलाया भी, तो मुझसे पूछ लेना था। मेरा ही बनाया दरबान बन कर ससुरा सिरचढ़ा हो गया है। हो गुण्डा या गुण्डा शिरोमणि, मैं तो टट्टी से आते ही उसको दूर भगाता हूँ।" वह बात पूरी भी न कर पाया था कि वह आदमी नहा-निबट कर आता नज़र आया जिसकी चर्चा चल रही थी।

"मैं पहचान नहीं सका कि आप कौन हैं ?"

"मैं दरबान हूँ सी० एण्ड बी० कम्पनी का। स्वामीनाथ जी से परिचय है।"

"और मैं कहूँ कि आप सी० बी० कम्पनी के दरबान नहीं, मिर्ज़ापुर के मशहूर गुण्डे मदनू महाराज हैं, तो आप क्या कहेंगे ?"—गौरीसिंह ने पूछा—"अरे गुरु ! भूल गये ! फ़तहपुर सेन्टर जेल में हम दोनों—!"

"तुम यहां आये कैसे"—क्रुद्ध पलटू ने कहा—"चले जाओ !"

"धीरे बोलो पलटू महाराजा !"—गौरीसिंह ने डांटा—"यह अपने ज़िले के शेर, गौरव, वीर पुरुष हैं। तुम जिसकी नौकरी करते हो वह घीसालाल मारवाड़ी इनसे कहीं ज़्यादा खूंख़ार, कहीं बड़ा गुण्डा, कहीं बड़ा डाकू है। कलकत्ते को तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ।"

"बाबा आदमी नहीं पहचानते हैं !"—पलटू के पुत्र पहलवान

स्वामीनाथ ने कहा—"मदनू महाराज मेरे गुरु हैं। मेरे निमन्त्रण पर तीन बटे तेरह में आये हैं। इनके पीछे पुलिस हो या पुलिस का बाप, यह मेरी कोठरी में सोयेंगे। ज़िम्मेदारी मेरी है। दरबान मैं हूँ—बाबा नहीं।"

"नहीं,—मदनू गुरु के सोने का एक-से-एक सुरक्षित और शानदार प्रबंध मैं करूंगा।"—गौरीसिंह ने कहा—"मैं तो बलवानों, चरित्रवानों का दास हूँ। बनियों की सेवा में बिल्ली बने पलटू दुबे शेरों की क़द्र क्या जानें। मदनू महाराज वह हैं जिन्होंने सावन-भादों की भयानक गंगा में कूद और तेरह कोस तक तैर कर बबुरी गांव के किसान की कन्या की जान बचाई थी। मदनू महाराज के रोब के उधर के गांवों में चोरी नहीं होती और न जारी।" इसके बाद आदर-भाव से गौरीसिंह ने मदनू महाराज से पूछा—"इस बार पुलिस आपके पीछे क्यों पड़ी है?"

"चौबेपुर के ज़मीन्दार बांकेलाल को मैंने जान से मार डाला था। साथ ही उसका घर भी लुटवा लिया था।' मदनू ने रूखे भाव से उत्तर दिया।

"वाह बहादुर!"—हत्या और डाके की चर्चा के चमकते ही वृद्ध गौरीसिंह की बाछें खिल गईं—"चौबेपुरवाले के पास तो ख़ानदानी माल था। गहरी गठरी हाथ लगी न?"

"गहरी तो क्या"—मदनू ने कहा—"२५–३० हज़ार की सामग्री और नगदी मिली थी। मगर, उस डाके में बांकेलाल को मारने का जितना महत्व मेरी आंखो में था उतना लूट-पाट का नहीं। बांकेलाल बदनाम व्यभिचारी था जिसके सबब अनेक गांवों की गरीब लड़कियाँ क्वाँरी होने पर भी क्वाँरी न रह गयी थीं।"

"सत्य की रक्षा के लिए हत्या की गयी थी न?"—गर्व से गौरी

सिंह ने मदनू महाराज से पूछते हुए पलटू दुबे की तरफ़ देखा—"देखा दुबे ? क्योंकि बांकेलाल व्यभिचारी था इसलिए मदनू महाराज ने उस नीच की हत्या की थी। एक ब्राह्मण यह हैं और एक हो तुम जो देख और जान सुन कर ज़िन्दा मक्खी निगलते हो।"

"सभी अगर डाके और हत्या का व्यापार करने लगें, तो समाज रहेगा ?" —पलटू ने प्रसन्न भाव से पूछा—"गौरीसिंह तुम्हारी भुजाएँ जितनी मज़बूत हैं उतना दिमाग़ नहीं, बुद्धि नहीं।"

"आज तो"—गौरीसिंह ने गम्भीरता से कहा—"पलटू पण्डित ! सभी डाके डालते हैं। मगर, पकड़े जाते हैं, बदनाम किए जाते हैं, गौरी और मदनू-जैसे ग़रीब-पुरुषार्थी केवल। ग़रीबों को खाने का अन्न बाज़ार में नहीं और भाव चढ़ाने के लिए सेठों के गोदामों में लाखों टन अनाज बन्द। लाखों आदमी मार डाले गए बंगाल में ही आदमी के घातक लोभ द्वारा; पर, किसी ने उन्हें हत्यारा या डाकू नहीं कहा। बल्कि समुदाय के हत्यारे ही आज बड़ा बाज़ार में पूज्य हैं। न्याय और कानून और पुलिस और पल्टन-शासन के शास्त्रास्त्र —कमज़ोर ग़रीब ही के लिए हैं।"

"सच कहा गौरी दादा"—छपरा के बलिष्ठ और दढ़ियल जमादार रामसिंहासन सिंह ने अनुभवी गौरी की ताईद की।

"सवा सोलह आने सच"—रामचरन मिश्र दरबान से भी गौरी की बात की दाद दिए बग़ैर रहा नहीं गया—"आज चोर और डाकू ही डाकू तो नज़र आते हैं। डाक्टर दुखी रोगी को अधिक पैसे पाने के लोभ में तीन की जगह तेरह या तेईस दिनों में अच्छा करता है ! यह डाका नहीं तो क्या है ? हत्या नहीं, तो क्या ? सुफ़ेदपोशों के ये जितने ब्लैक-व्यापार हैं, सब डाके ही तो हैं ? अपने ऐशोआराम के लिए नेकनाम नेता भी जनता की आँखों में धूल डाल कर उसे लूट लेते

है। यह डाका नहीं, तो क्या है? डाका, हत्या, अगर बुरी चीजें हैं, तो इनसे ग़रीब कमअक़्लों को ही नहीं, बड़े-बड़े व्यापारियों और पदाधिकारियों को भी बचना चाहिए! नहीं तो, आज बुद्धिमान डाकुओं के हाथ में शक्ति है, तो वे कमबुद्धियों को पकड़ते-सताते हैं, लेकिन अगर कल कमबुद्धियों के हाथ में ताक़त आयी, तो देखना इन बुद्धुओं की दुर्गति! जिन फ़ौलादी दोधारे गजों से बुद्धिमान् डाकू भोलेभालों की भुजाएं नाप रहे हैं, उन्हीं से वे उन हरामख़ोरों देखाऊ मोरों की नाक नापेंगे नाक!"

"तब मदनू महाराज!"—गौरी ने रामचरन मिश्र के भाषण को रोका—"डाके और हत्या के बाद क्या हुआ?"

"पुलिस सामने आयी। पर, तब तक हमारी पार्टी नौ-दो-ग्यारह हो चुकी थी। फिर भी, सभी जानते थे, कि मदनू पण्डित ने बांके लाल को ख़ूनी नोटिस दे दी है। सो, पुलिस सीधे मेरे गांव में, मेरे ही घर आ धमकी। पुलिस कप्तान, सब इन्सपेक्टर, हवलदार और डेढ़ दर्जन हथियारबंद सिपाही। गांव में सन्नाटा छा गया; पर, मैं नहीं डरा। डंडा लेकर बाहर निकल आया। मुझे पता नहीं था कि मेरे चारों ओर पुलिस के तगड़े जवान दुबके तैनात थे। पीछे से आकर कइयों ने मेरा लम्बा डंडा पकड़ लिया—"डंडा छोड़ो! डंडा छोड़ो! हरामज़ादो!"—मैंने ललकारा—"एक-एक कर सामने आओ। तुम्हारे हाथ में बन्दूक हो, पिस्तौल और मेरे हाथ में डंडा। गोली चलाने के पहले ही अगर मैं बंदूक़धारी को मार न डालूं, तो मदनू मेरा नाम, नहीं......पुनि न धरौं धनु हाथ।"

"शाबाश...बहादुर!"—गौरी सिंह खिल उठा—"ऐसा मालूम पड़ता है जैसे मेरी अपनी ही बातें तुमने दुहरा दीं। फिर क्या हुआ?"

"वही जो होना था !"—मदनू ने सहज सुनाया—"उन्होंने मुझे बांध लिया और थाने सुनार ले जाने को गंगा घाट ले चले। मैं मन-ही-मन प्रसन्न हुआ, क्योंकि, नदी मेरे लिये वैसी ही सहज जैसी मछली के लिए। मैंने सोचा—चलो बच्चू, ज़रा गहरे पानी में तो चलो। और एक नाव में भर कर पुलिस का खल दल चला।"

"वाह गुरू !"—गौरी सिंह बहुत ख़ुश—"खल दल पुलिस वालों को खूब बनाया।"

"अरे किस्सा तो कहने दो।"—पलटू दुबे भी सावधानी से सब सुन रहा था—"तब क्या हुआ ?"—पलटू मदनू का मुंह आतुरता से ताकने लगा।

"बीच धारा में नाव पहुँची। भंवरों से भरी, फेनिल, बिजली की तरह धारवाली गंगा बाढ़ पर थी। सिपाही सुरतीमल रहे थे, कप्तान सिगरेट पी रहा था। बंदूकें लापरवाही से इधर उधर टिकाई हुई थीं। सो, आव देखा न ताव, बीच धारा में कप्तान की पिस्तौल झपट कर और तान कर मैं नाव को हिला-हिला कर डगमगाने लगा। इतना सारा काम मैंने पलक मारते ही में किया था। पसेरियों पानी नाव में आ गया। पुलिसवालों के मुंह यों सफेद, जैसे पेट्रोल पम्प पर जलती लुकाठी फेंकी जाती देख निकटवर्ती आदमियों के।"

"महाराज !"—कप्तान ने कहा—"डुबोओगे हमें ?"

"तुम्हें न डुबोऊँ, तो मैं ख़ुद अपनी जान से हाथ धोऊँ ? तुम मेरी जान—ख़बरदार ! जो एक आदमी भी अपनी जगह से हिला ? तुम मेरी जान लोगे, तो मैं भी तुम्हारी जान लूंगा ? मदनू महाराज की जान ऐसी सहज नहीं ?"

"आप चाहते क्या हैं ? —नाव मत डुबोइये ! हमारी जान आपके हाथ में है। ब्राह्मण को कृपालु होना चाहिए !"

"बेशक !"—मैंने कहा—"ब्राह्मण दयालु हो, तो सुन्दर; मगर मरता क्या न करता, कप्तान साहब ? जब जान पर आ जाती है, तब जाति नहीं रह जाती ? केवल जान की रक्षा का ध्यान रह जाता है । देखो कप्तान ! अगर जान बचानी है अपनी और सारी पार्टी की, तो चुपचाप बैठे रहो और मैं तुम्हारी बन्दूकें गंगा में फेंक दूँ, जिससे तुम दग़ा न कर सको ।"

"अरे !—"कप्तान ने दांत दिखाये—"बन्दूकें फेंक दोगे, तो हमारी नौकरी चली जायगी । मैं वादा करता हूँ । मैं सैयद हूँ, धोका कभी नहीं दूँगा । आप कूद कर, तैर कर उस पार चले जाइये, हम अपनी नाव लेकर इस पार चले जाते हैं ।

"कुछ भी हो कप्तान साहब,"—मैंने कहा—"यह पिस्तौल तो मैं नहीं देने वाला । बंदूकें छोड़ देता हूं, होशियार !"—हवा में गोली दाग जबतक पुलिस दल चौंककर संभले हाथ में पिस्तौल लिए अथाह गंगा, बिजली-प्रवाह में कूद पड़ा और पूरे ३० मिनट तक पानी के अन्दर-ही-अन्दर तेज़ तैरता रहा । मेरे भागने के तुरन्त बाद पुलीस वालों ने क्या किया मुझे पता नहीं । पर, चुनार से चार मील दूर जब मैंने साँस लेने को सिर बाहर निकाला, तो, चुनार की तरफ़ से बंदूकों के धड़ाके की आवाज़ आती सुनाई पड़ी ।"

"दग़ा किया न पुलिसवालों ने ?"—गौरी सिंह ने कहा—"इनका ऐतबार कभी नहीं करना चाहिए । वह तो तुम थे, वीर-बजरंग मदनू महाराज ! पुलिस का पिस्तौल छीन डुबकी मारी, तो चुनार से बनारस ही निकले ! मामूली आदमी होता या तुम्हीं ऊपर तैरते होते, तो वादा के बाद भी सैयद साहब ने पुलीस स्वभाव कदापि न छोड़ा होता ।"

एकाएक सबने सामने से आते सब इन्सपेक्टर कालीपदो गांगुली को देखा । असिल में थोड़ी ठन्डाई ले लेने और फिर मदनू की साह-

सिक कथा में निमग्न हो जाने के कारण फाटक से आँगन में आता गांगुली किसी को दिखाई नहीं पड़ा। वह वर्दी पहने, पेटी में पिस्तौल कसे हुए था। उसे देखते ही पलटू दुबे के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। यह ताड़ते ही गौरी सिंह ने हाथ के इशारे से उसे काट डालने की धमकीदेकर निडर नज़र आने का संकेत किया।

"ओ हो! गौरी गुण्डा के भी दर्शन हो गए!"—गांगुली ने पहले गौरी से ही बातें शुरू कीं —"यहां तुम कैसे?"

"यहाँ हमारे देस-भाई रहते हैं"—गौरी ने निडर कहा—"अक्सर छुट्टी के दिन यहाँ भंग-ठण्डाई छनती है। पर, आप कैसे आये?"

"डरो नहीं, गौरी सिंह," —गांगुली ने कहा—"तुम्हारे ख़िलाफ़ कुछ भी नहीं है। यहाँ का दरबान कौन है? तीन बटे तेरह नं० मकान यही है न?"

"यही है हुजूर!"—आगे बढ़ कर पलटू दुबे ने अपने पुत्र पर आनेवाली संभावित विपत्ति को अपने ऊपर ओढ़ना चाहा—"क्या हुकुम है?"

"तुम यहाँ के दरबान हो? क्या नाम है? अच्छा, यह कौन है?"

गांगुली ने मदनू महाराज की तरफ़ इशारा करके पूछा। मदनू जवाब दे इसके पहले ही पलटू दुबे ने बात लपक ली—"यह हमारे मेहमान हैं। अच्छे पहलवान, ब्राह्मण, यह हमारे गुरू घराने के हैं। यहाँ जितने लोग हैं सभी इन पर जान देनेवाले हैं।"

"आप चाहते क्या हैं सार्जेंट साहब?"—निर्भीक गौरी ने पूछा—"हममें से किसी को आप अपने संग ले जाना चाहते हो, तो साफ़ क्यों नहीं कहते?"

"मगर, तुम मुझसे डरते क्यों हो ठाकुर?"—परिचय प्रकट करता हुआ गांगुली बोला—"हम तो पुराने परिचित हैं। मैं वारंट लेकर

किसी को पकड़ने नहीं आया हूँ। मैं सेठ घीसालाल जी से मिलने का वक्त क्या है महज़ यह जानने को आया हूँ।"

"टेलिफ़ोन से टाइम ठीक किए बिना सेठ साहब मुश्किल से मिल पाते हैं।"—पलटू ने बड़ी सावधानी से समझाया—"सेठ स्वयं इतने काम संभाले हैं, कि कब घर पर रहेंगे, इसका कोई ठिकाना नहीं।"

"ठीक। मैं टेलीफ़ोन करूँगा।"—जाते-जाते गांगुली ने कहा—"आप लोग बैठ जाइये, खड़े क्यों हैं? दरबान जी, मैं किसी दिन फिर आऊँगा।"

गौरी सिंह ने पुलीस के आने पर मदनू महाराज का चेहरा भी ताड़ा था। उस पर उन्हें भय की फीकी रेखा तक नज़र नहीं आयी। उसने मन-ही-मन उस शूर स्वभावी ब्रह्म-संतान को नमस्कार किया। हम लिख चुके हैं—गौरी सिंह डाकू ब्रह्म-भक्त था।

घीसालाल के दो लड़के, हम लिख चुके हैं। एक बालीगंज के विशाल बंगले में सपरिवार रहता। और उससे छोटा अलीपुर के राजसी बंगलेमें बालबच्चों के साथ तीसोंदिन दीवाली जगमगाता था! सुनने में यह आया, कि इन लड़कों से नाराज़ हो, प्रत्येक को पन्द्रह-पन्द्रह लाख रुपये नक़द देकर घीसालाल ने अलग कर दिया था। वह उनका— "मुंह नहीं देखना चाहता था!"

लेकिन दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम था। दो जगह रह कर भी व्यापार और विहार तक में दोनों भाई एकाचार थे! बड़े का नाम था मोहनलाल और छोटे का सोहनलाल। घीसालाल आचार-विचार में जितना ही पुराना उसके दोनों लड़के उतने ही माडर्न नव-रंगी! हमारा अभिप्राय रहन-सहन, भोग-विलास के दृष्टिकोण से है। विचार में शुद्धता न तो घीसालाल के आचारों में नज़र आती थी और न उनके विलासी बुद्धि-विहीन पुत्रों में।

फिर भी, पिता से अलग होनेके तीन ही साल के अन्दर दोनों भाई करोड़पतियों से टकरानेवाले गिने जाने लगे! कोई पूछे कि बुद्धि विहीन थे दोनों लड़के तो ऐसी कमाई उन्होंने कैसे की? इसका एक उत्तर तो यह है, कि आज कोरा धन अनायास ही धन को खींचता। उसके लिए अक़ल ज़रूरी नहीं। हो, तो, क्या कहने! गत महायुद्ध और उसके बाद के ब्लैक-युग में एसे-ऐसे जाहिल-जपाट लक्ष्मी-वाहन बन गये जिनका जोड़ मिलना सहल नहीं! धन के उलटफेर के उसी काल में मोहन और सोहनलाल की गोटी भी लाल हो गयी। वे ८०, ९० लाख के आसामी बाज़ार में बजने लगे!

मगर, हमने ऊपर कहा है, मोहन और सोहन नये रंग के रंगीले थे

! घीसालाल ने पैसे बढ़ा कर 'मिलें' ख़रीदीं, फैक्टरियाँ खोलीं, मुनाफ़े के क़ांट्रैक्ट लिये, गला-काटू सूद पर उन सम्पत्तिवानों को रुपये दिये जिनके गले बाज़ार-भाव की तेज़ छुरी से कटने के क़रीब थे। पर, रुपये प्रचुर होने पर, मोहन और सोहनलाल को फ़िल्म कम्पनी चलाने सूझी!

"फ़िल्म धन्धे में"— बड़े भाइ ने छोटे को समझाया—"पैसे-के पैसे मिलते हैं—सौ के तीन सौ—साथ ही, मज़े फोकट में! एक से एक सितारे अपनी मुट्ठी में रहेंगे!"

"बहुत अच्छी बात है"— सोहन ने कहा — "तो जल्द ही कर डाल यह काम!"

"बम्बई में एक अच्छा स्टूडियो बिकने वाला है!" —मोहन ने सुनाया।

"कौन स्टूडियो?"

"नेशनल आर्ट स्टुडियो!"

"वही जिसमें 'शबनम' और 'फूलकुमार' वाला चित्र 'माशूक' तैयार हुआ था?"

"वही, हां!"

"बस—वो ले ही लें! कितने रुपये लगेंगे?"

"साठ लाख मांग रहे हैं! सौदा पचास लाख तक हो जायगा!"

स्टुडियो ख़रीदने के बाद किसी मुसलमान डाइरेक्टर की सलाह से मारवाड़ी बन्धुओं ने पहली कहानी जो तैयार कराया उसका नाम था 'रखेलियाँ'! 'रखेलियों' में किसी रजवाड़े के हरम की गाथा थी। 'हीरो' का पार्ट किया था मशहूर एक्टर फूलकुमार ने और हीरोइन का-भारत विख्यात सिनेमा सुन्दरी—'शबनम' ने! पहली ही तस्वीर-बाक्स आफ़िस हिट याने सर्वप्रिय बनी! केवल कलकत्ते के 'सेन्ट्रल' थियेटर, में 'रखेलियाँ' डेढ़ साल तक फुल-हाउस चलता रहा! 'रखेलियाँ

के एक सीन में साठ-साले बूढ़े राजा ने एक शोडषी रखैली को इस चिपक से सीने से चिपकाया जैसे फटे लिफ़ाफे पर टिकट। बूढ़े द्वारा युवती आलिगंन का वह दृश्य पर्दे पर कोई तीन मिनटों तक बना रहता था ! बस, इसी को देखने के लिये जवान-तो-जवान मनचले बूढ़े-बूढ़ियां तक नित्य नेम से 'सेन्ट्रल थियेटर' जाते थे !

'रखेलियाँ' में ऐसी सफलता मिली कि दोनों भाई उन्मत होकर पीने और विलास करने लगे, बुरी तरह। बम्बई में नशा-निषेध होने से. पीके कल हम तुम जो निकलें झूमते मैख़ाने के मज़े दुर्लभ, सो, मोहन-सोहन विविध बहानों से बम्बई की सिनेमा सुन्दरियों को कलकत्ते बुलाने लगे। इसमें अनेक तरुण और अमीर मारवाड़ियों ने भी उनका उत्साह शैतान की आंतकी तरह बढ़ाया ! सो, बम्बईके बिगड़ेदिल अमीरज़ादे २० साल पहले जिस तरह मजों के पेड़े छील कर खाते थे, वैसे ही, २० साल बाद कलकत्ते के बिगड़े दिल मारवाड़ी तरुण भी छान-छान क रस लेने लेने !

उस दिन भी छान कर रस लेने को बारी थी। क्योंकि बम्बई से ८ फिल्मी परियां पधारी हुई थीं—विख्यात मारवाड़ा, शरीर गठन संस्था 'महावीर क्लब' के निमन्त्रण पर उसके वार्षिकोत्सव के प्रोग्राम में भाग लेने के लिए----टिकट लगाया गया था, फिर भी, इतनी भीड़ हुई थी कि जिस थियेटर में प्रोग्राम था उसकी तरफ़ का सारा रास्ता ही जाम हो गया था ! एक ही शो की आमदनी पचास हज़ार रुपये हुई, क्योंकि, संस्था की सफलता के नाम पर टिकट दर हज़ार रुपया, पांच सौ रुपया, सौ और पचास रुपया था ! पचास से कम का टिकट था ही नहीं; फिर भी, हाउस फुल ! तभी तो सितारों को ऊंची चमकदार दक्षिणा देने पर भी 'महावीर क्लब' के स्थायी कोष को इतने रुपये बच रहे कि प्रतिद्वन्दी क्लबों के मुंह में पानी आ गया ! वे हाथ मलते रहगये ! यह सोचते कि ऐसी मुनाफे की सूझ उन्हें क्यों नहीं सूझी ? 'महावीर-

क्लब का प्रोग्राम हो जाने के बाद सोहनलाल ने आठों सितारों को एक प्राइवेट पार्टी में निमन्त्रित किया ! पार्टी रात १० बजे से उस के अलीपुर वाले बंगले में होनेवाली थी—"जिसमें एक विचित्र फ़िल्म भी घरेलू स्क्रीन पर दिखाया जायगा !" फ़िल्म मोहनलाल के पास बालीगंज के बंगले पर थी । मोहन उसे लेने गया था । फ़िल्म लेकर चलने के पूर्व बड़े भाई ने छोटे से कहा—"मुझे शबनम ही पसन्द है, बैठने का प्रबन्ध करते वक्त यह न भूलना ।"

"पर, उसके साथ उसकी मां जो लगी रहती है ?"—सोहन ने सावधान किया ।

"हां, साली खूसट,"—मोहन ने गाली दी—"वह बीच में बाधक न होती, तो कल ही 'महावीर क्लब' के उत्सव के बाद मैं शबनम को अपनी मोटर में उठा ले गया होता । उस बूढ़ी को किसी और के साथ उलझाकर शबनम को मेरे पास जमा दोगे तब मैं शाबाश कहूँगा !"

दोनों भाई बंगले से बाहर आ मोटर में घुस ही रहे थे, कि किसी दाढ़ी-जटा-तिलकधारी साधु ने आकर आशीर्वाद दे कर कुछ मांगा ! साधु को देखते ही दोनों भाई मतलब से आपस में मुस्कराये —"महाराज़ चाहें, तो हमारा संकट दूर हो सकता है ।"—मोहन ने कहा—"बाबा जी महाराज, हमारी एक बुआ जी हैं बूढ़ी । उन्हें अगर आप मेरे साथ चलकर परमार्थ का उपदेश देकर समझा दें तो हम लोग आपकी हर-तरह से सेवा करेंगे ! बोलिए, मंजूर है ? हो, तो चले आइये मोटर के अन्दर ! हम बुआ जी के ही घर जा रहे हैं !"

मोटर में घुसते हुए साधु ने कहा—"उपदेश देना साधु का काम है, फल भगवान् के हाथ में है ! चलो बच्चा !"

"आपके बाल-बच्चे कितने हैं"—मोटर चलाते हुए छोटे भाई सोहन ने साधु से क्रूर-प्रश्न किया ।

"अपने राम बाल ब्रह्मचारी हैं बाबा ! परिवार या स्त्री से कभी सम्पर्क ही नहीं रखा !"

"स्त्री ने आप पर प्रभाव ही नहीं डाला ?"—बड़े भाई मोहन ने जिज्ञासा की "—या आप ही औरत के अयोग्य हैं ? मैं तो नहीं मानता कि कोई मन-वचन-कर्म से बाल ब्रह्मचारी रह सकता है !"

"हम लोग सहज एकाकी हैं, बाबा !"—साधु ने सुनाया—"फक्कड़, घुमक्कड़। हमारे ही बारे में गोस्वामी जी ने लिखा है कि सहज एकाकिन के सदन कबहुँकि नारि खटाहिं !"

"फिर, आपने हमारी बुआ जी को उपदेश देने का ज़िम्मा कैसे ले लिया ?"—मोहन ने धृष्ट-प्रश्न किया।

"बाबा, उपदेश देना ही हमारा धर्म है।"

"मैं तो"—मोटर चलाता हुआ सोहन बोला—"उपदेश देने की अवस्था में भी स्त्री से बच नहीं सकता !"

"मगर, महाराज बाल ब्रह्मचारी है।"—मोहन ने कूट के स्वर में सुनाया—"ये साधु ठहरे ! पंचाग्नि के बीच भी जल नहीं सकते !"

अलीपुर के बंगले पर पहुँच कर सोहनलाल ने साधु के ठहरने की व्यवस्था एक साफ़--सुथरे कमरे में करायी। तुरंत जल--फूल--फल पुष्कल उसके सामने आये।

"क्षमा करें महाराज !"—मोहन ने बतलाया—"बुआ जी दक्षिणेश्वर चली गयी हैं। ८ बजे रात के बाद आयेंगी ! तब तक आप आराम से भजन--पूजन करते हुए इस बंगले को पवित्र करें।"

इसके बाद बड़े और सुसज्जित हाल में सिनेमा की सुन्दरियों की पार्टी की तैयारी होने लगा। मुलायम गलीचा के ऊपर गिन कर अट्ठारह सीटें सजाई गईं। चौड़ी, मुलायम, कम ऊंची दो-दो कुर्सियां इस तरह सटा कर रखी गयीं कि दूर से सोफ़ों का भ्रम होता था। दोनों कुर्सियों के बीच में निहायता सुन्दर टेबल, जिस पर सुगन्धित पीले गुलाबी फूलों से भरे शीशे के पानीदार फूलदान। इस तरह नौ जोड़े सीटें

में से एक जोड़ा सीट सबसे आगे–बीचमें, और बाकी जोड़ियां उसके पीछे। हाल में नील और लाल बल्बों के दो फ़ानूस। प्रकाश मन्द मगर मादक—मोहक! पौने दस बजे तक प्रायः सभी अतिथि आ गए। आठ फ़िल्म सुन्दरियां और उनकी बग़ल में बैठने के लिए आठ ही तरुण मारवाड़ी महाधनिक। शबनम के साथ उसकी मां भी। ४५ की सिन में वह नख़रेबाज़, कि शैतान की पनाह! गुलगुल थुलथुल गदराई हुई शबनम की मां वह सिंगार-पटार किये थी! देखनेवालों को आकर्षण से अधिक घृणा होती थी। पर वह थी कि औरों की घृणा को भी अपने रूप या गलित-यौवन की प्रशंसा मानती। बांके तरुणों से बातें करते वक्त उसकी लड़की शबनम की आंखें भले ही शर्म से झुक जातीं मज़ेदार—पर 'अम्मा' की बेहया आंखें चौबीस घण्टे खुली रहनेवाली फीकी चाह की दुकानें! जवानों से बातें करती अम्माजी अपने होंठ चाटतीं, आंखें मटकातीं; सीने उचकाती थीं। वह इतनी होशियार मज़ापरस्त औरत थी कि अपनी बेटी शबनम की ताज़ा जवानी का चारा फेंक कर दिलफेंक तरुणों को आकर्षित करती उसकी ओर और सामना करती स्वयम्। लड़की को लड़कों से दूर रहने का उपदेश रटती हुई भी शबनम की मां हमेशा जवानों ही से उलझती। उसका ख़्याल था कि लड़की जब तक किसी से फसती नहीं, तभी तक उसकी आमदनी उसके हत्थे चढ़ सकती है। अतः वह शबनम को नाइट शूटिंग में भी नहीं भेजती थी। कान्ट्रैक्ट में यह शर्त भी शामिल होती कि शबनम के सीन हमेशा दिन ही में लिए जाएंगे। मोहन बहुत दिनों से शबनम की ताक में था। शबनम ही के लिए विलासी मारवाड़ी तरुणों को बहका कर महावीर क्लब के वार्षिकोत्सव के बहाने उसने सिनेमा की सात दूसरी सुन्दरियों को भी कलकत्ते बुलाया था। आज मोहन ने, लाख रुपये खर्च करके भी, शबनम को पाने का दृढ़ निश्चय

किया था। साधु के मिल जाने से उसे सहज ही मार्ग मिल गया। क्योंकि, वह जानता था, कि शबनम की मां साधु-फ़कीरों पर बड़ा विश्वास करती है।

"आपसे मिलने के लिए"—आते ही सोहन ने शबनम की मां से कहा—"मैंने हरिद्वार के एक परम सिद्ध पुरुष को २ घंटे से रोक रखा है। दर्शनीय साधु हैं। पहले उनसे मिल लीजिये—महज़ एक मिनट बड़े ही चमत्कारी महात्मा हैं।"

"साधु को मेरे लिए आपने इतनी तकलीफ़-दी। मेरी मां! ख़ुदा क्या समझेगा।"—और शबनम को भूल वह सोहनलाल के साथ साधुवाले कमरे की ओर नाचती घोड़ी की तरह तेज़ दुलकी। कमरे में पहुँचते ही साधु के चरणों से यों लिपट गयी, जैसे नदी में सवार लिपटे।—"महाराज! मुझे शान्ति नहीं मिलती! ईश्वर ने सब कुछ दिया है. पर, सारी रात नींद मुझे नहीं आती। मेरी रक्षा कीजिये।" साधु को हिन्दू जान चालाक सिनेमा नटी की मां हिन्दी शब्दों का प्रयोग करती रही।

"रक्षा भगवान् करेंगे।"—साधु ने कहा—"सारी चिन्ताओं का जड़ रुपया है। फिर सम्पत्ति; जो रुपये का ही दूसरा रूप है।"

"धन्य महाराज!"—नटी की मां ने कहा—"आपने हृदय की बात ताड़ ली। मेरी चिन्ता का एक ख़ास कारण धन भी है, जिसे लेकर डरती, संदेह करती, सूंघती ही रहती हूँ।"

दोनों को बातों में विलीन देखते ही सोहनलाल वहाँ से खिसक गया। तब तक हाल की मन्द, मादक रोशनी में एक-एक तरुण मारवाड़ी एक-एक सिनेमा नटी के साथ गुदगुदे आसन पर जम गया था। मोहन की बग़ल में शबनम-जिसे मौक़ा पाते ही मोतियों का हार उपहार दे कर उसने फुसला लिया था। 'नीरा' नाम्नी सुन्दरी सोहनलाल की प्रतीक्षा में अकेले ही मदिरा 'सिप' कर रही थी। सोहन भी आ गया।

इस तरह दौर-पर-दौर चलते रहे एक घंटे तक । अब मोहनलाल ने सोहनलाल से कहा कि वह अम्मां और साधु को भी बुला ले और फ़िल्म चालू किया जावे । सोहन के आग्रह पर साधु चित्र देखने पहले नहीं जाना चाहता था, पर, जब उसे यह विश्वास दिलाया गया कि चित्र में परमात्मा की महिमा का ही चित्रण है तब उसे कोई आपत्ति न रही । टार्च के सहारे सोहन ने दोनों को सबसे आगेवाली सीटों पर पहुँचाया ।—"शबनम कहाँ है ?"—पूछा जब उसकी अम्मा ने, तो पीछे से आवाज़ आयी —"मैं यहाँ हूँ अम्मा ! मीरा के साथ ।" इसी वक्त साधु और अम्मा के सामनेवाली टेबल पर दो गिलासों में कुछ ला कर सोहन ने अपने हाथ से हाजिर किया—"शुद्ध फलों का रस ! बादाम, मिश्री, दूध और केसर का यह शर्बत तुलसीदल और गंगाजल से पवित्रित है ! चित्र देखते-देखते आप लोग इसे आराम से पी सकते हैं !" मगर, गिलास यों ही पड़े रहे ! न तो बाबा ने छुआ और न बाई ने । फ़िल्म पर्दे पर खुलने लगी ।

पहले बहती नदी, लहराता समुद्र, चहकती चिड़ियां, महकते बागीचे ! ऐसे चित्र दिखाए गए, कि सबके दिलों में गुदगुदी-सी सनसना उठी । कबूतर के जोड़े का दीर्घ चुम्बन इतना आकर्षक था, कि अंधेरे में ही शबनम की मां ने बाबा जी को ताड़ा, जिनकी निगाहें पर्दे पर यों गड़ी थीं जैसे गुड़ के भेले पर मक्खी के पंख—"ठंडाई पीते रहिए महाराज !"—नटी की माता ने साधु के हाथ में गिलास दिया ।

चित्र चलता रहा । प्राकृतिक दृश्यों के बाद बाली द्वीप के किसी उत्सव के चित्र दिखाये गये जिसमें जवान छोकरियां सीने खोल कर नाच रही थीं ! शबनम की मा ने पुनः ताड़ा कि साधु पर उक्त चित्रों का प्रभाव क्या पड़ता है । साधु गिलास मुंह में लगाये, चित्र में गड़ा हुआ-सा था, इतना, कि रस उसके मुंह में न जाकर दाढ़ी-पथ से फ़र्श

पर टपक रहक था !— 'ज़रा ठहर जाइये महाराज !" कह कर शबनम की मां ने साधु के निकट होकर अपने सुगन्धित रेशमी रूमाल के उसकी भींगी दाढ़ी पोंछ दी ! इस पर सावधान होकर साधु ने जो उसे विरत करना चाहा, तो, धोके में, उसका बाया हाथ शबनम की मा के मांसल बाएं स्तन पर पड़ गया......"हे राम !"—साधु ने हाथखींच लिया। मगर, नटी की माता को कोई आपत्ति न हुई—"कोई हर्ज नहीं महाराज !"

तब तक पर्दे पर फ्रेंच-चित्र दिखने लगा ! नंगे विलास के चित्र में दो प्रेमी युवक-युवती नदी किनारे चुम्बन-आलिंगन-रत नज़र आये ! फिर चार डाकुओं ने उन पर आक्रमण किया। डाकू जब युवक को मार डालने पर आमादा हुए तब उसकी रक्षा की शर्त पर युवती पशुओं से प्रेम करने को राज़ी हुई। एक-एक कर चारों ने उस युवती के आकर्षक तन और यौवन से नंगे खेल खेलना शुरू किया।

इसी वक़्त मोहन ने शबनम को अपने सीने पर खींचना चाहा... "अरे, अम्मा हैं !"—धीरे से, राज़ी-स्वर में, शबनम ने कहा—"कहां हैं अम्मा ?" मोहन ने उसे चक्क चूमते हुए पूछा—"देखो, उनकी सीटों पर न तो साधु का सिर नज़र आ रहा है और न तुम्हारी अम्मा का ! ठंडाई में मैंने नशा मिलवा दिया था ।" "वे कहां गये ?"—शबनम ने पूछा—"दोनों लिपटे पड़े होंगे ! सो, गुड गर्ल की तरह तुम भी अपनी मा का अनुसरण करो !" कह कर मोहन ने उसको इतनी ज़ोर से दबाया कि शबनम के मुंह से निकल गया—"हड्डी तोड़िएगा क्या ?" फिर पांच मिनट तक सन्नाटा रहा ! चित्र में डाकू फ्रेंच युवती का सतीत्व लूटते रहे और उस हाल में मनचले नये मारवाड़ी उसकी नक़ल फ़िल्म नटियों के साथ हू-ब-हू करते रहे !

इसी समय हाल का पीछे का द्वार खुला और अन्दर पांच आदमी धड्धड़ाते घुस आये ! पांचों के हाथ में तेज़ प्रकाशवाले टार्च थे; जिनकी रोशनी से सारा हाल प्रकाशित हो गया, जिसमें आठ मदमत्त धनिक मारवाड़ी आठ उन्मादिनी औरतों के साथ नंगे नज़र आये !

प्रकाश देखते ही आठों मारवाड़ी इधर-उधर भाग खड़े हुए। मगर, अभी भी अगली सीट पर बुरी तरह लिपटे हुए साधु और अम्मा को किसी की ज़रा भी आहट न लगी !

टार्चधारी आगन्तुकों में तीन पुलिस महिलाएं थीं और दो पुरुष, जिनमें हमारे पहचाने महज़ एक—वही कालीपद्‌ो गांगुली महाशय थे !

छोगालाल जी उवाच : १०

मल्लिक स्ट्रीट और तुलापट्टी की फलोंमयी चौमुहानी के दक्षिण नाके पर हाथ में गंगा जल का लोटा और कन्धे पर गीले कपड़े रखे, माथे पर चन्दन और रोली लगाए, लम्बा हड्डीला, चीमड़, छोगालाल जी प्रवचन कर रहा था। उसके चारों ओर आवारे, गंदे छोकरे और सवेरे हवड़ा के पुल पर हवा खाने या हुगली गंगा में नहा कर लौटने वाले राहगीरों की छोटी भीड़ खड़ी थी।

"राधेश्याम बोलो! सीताराम बोलो! जै जै राम बोलो!" छोगालाल ने आरम्भ किया और लड़कों ने फक्कड़, छबीले ढंग से दुहराया।"—

"सिनेमा मत देखो! दारू मत पियो! जुवा मत खेलो! किसी की औरत या दौलत को बुरी नज़र से न ताको!"

'सिनेमा देखो! दारू पियो! जुआ खेलो!" लड़कों ने बूढ़े सुधारक का मज़ाक उड़ाना चाहा, मगर, वयस्कों ने उन्हें बाधा दी—"क्या बकते हो!"

"मैं मारवाड़ी हूँ, मारवाड़ी की कहूँगा।"—छोगालाल जी ने सुनाया—"मारवाड़ी क्या थे, क्या हुए जा रहे हैं—फलतः क्या होने वाला है, बालू में से भी तेल निकालनेवाले मारवाड़ियों का पहले इस पर विचार करना प्रत्येक नेक मारवाड़ी का कर्तव्य है और फिर हरेक भारतवासी का। क्योंकि, मारवाड़ी न तो भारत के बाहर है और नहीं मारवाड़ी अभारतीय है।

"विचार करना मैंने कहा—सोचना, समझना! हमारी नई पीढ़ी जानती बहुत कुछ है; पर, समझती कुछ नहीं; जब कि हमारे बुजुर्ग

इतने प्रपंच नहीं जानते थे; पर, जीवन-दायक सभी भेद समझते थे। "फूहड़ नारि फतेपुर की" कवि सुन्दर ने शेखावाटी की माताओं को मलीन लिखा है—केवल ऊपर-ऊपर देख कर, नहीं तो उनके हृदय के भीतर देखा होता तो उनका मानस निर्मल, निस्वार्थभावों भरा हुआ पाते। सुन्दर ऐसे कवि की कविता मत पढ़ो! जो रूप देखता है, हृदय नहीं। आज की रूपवतियां--पूछिये उनके पतियों से—हृदय से उतनी ही दूर रहती हैं जितना बोतल का मिल्क पयोधरों के धारोष्ण दूध से! रूप को मत संवारो! सुधारो हृदय को! बाज़ार लूटने के लिए रमैया की दुलहिन मत बनो। ओ पुत्रियो! ओ बहिनो! ओ बहुओ! रमैया तोरी दुलहिन लूटा बाज़ार!"—उसने गाकर सुना कर बताया कि यह कबीर दास जी का पद है और यह है मेरा बनाया गीत—"चली री चटकिलिया गंगा नहाय!" छोगालाल जी के भोंपू-मधुर गान को सुन कर बच्चे चंचल हो उठे, मुखर—"चला रे चटकीलिया गंगा नहाय!" गंगा नहा कर लौटती घूंघटवाली सेठानियां तथा मुंह खुली महिलाएं लाज से लाल हो उठीं। पहले ज़रा ठिठकने के बाद गंतव्य दिशा में उनकी गति तीव्रतर हो गयी। फिर भी, छोगालाल जी की पुण्यध्वनि ने उनका पीछा नहीं छोड़ा—

यह कंचन सी काया तेरी
छन में होयगी भस्म की ढेरी
अन्त फेरि पछताते हैं—रे!
सुमिरन कर श्रीराम नाम
दिन नीके बीते जाते हैं।

ओ मारवली महलों में कमोडों पर बैठ कर अपने पुरखों का विरोध करनेवालो! ओ सूट-बूट-चुरुट-धारियो। ज़रा अपनी जड़-बुनियाद पर तो ग़ौर करो। तुम्हारे बाप-दादे क्या थे? कहाँ के

बाशिन्दे ? उनके रहन-सहन-भोजन-पान-ज्ञान और ध्यान क्या थे ? इस पर भी कभी तुमने ग़ौर किया है ? कवि सुन्दर दास ने तुम्हारे घर और वहाँ की जलवायु की सूचना पद्यबद्ध कर छोड़ी है। पढ़ा है तुमने ? कवि सुन्दर ने लिखा है—"बृच्छ न नीर न उत्तम चीर सुदेसन में गत देस है मारू ।"

"कुछ नहीं था तुम्हारे बाप दादा के पास; ओ ! आज सब कुछ रखनेवालो ! उन्होंने सब कुछ कमाया केवल कलकत्ते में नहीं उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम—ओरों ओर छोरों—दशों दिशाओं को परिव्रजन से रौंद कर उन्होंने विभूतिमय कर दिया था। मगर, भोग के लिए नहीं, शानदार योग के लिए। आज का कोई भी मालेमस्त मारवाड़ी अपने दादा या परदादा का चित्र देखे, तो आज के चश्मों में वे भोंदूवत दिखेंगे। सादी पगड़ी, मोटा पहरन, मैला दुपट्टा और घुटनों के ऊपर-ऊपर धोती। करोड़पति होने पर भी उन्होंने अपना सादा वेश नहीं बदला था, विनय नहीं छोड़ा थी। क्योंकि उसी साधारण ड्रेस में स्वदेश से आकर उन्होंने करोड़ों कमाया था, उस ड्रेस का मोह उन्हें देह से कम नहीं था। वे अनर्थ-भोगी नहीं, अर्थयोगी थे। और आज की पीढ़ी व्यर्थ रोगी है। आज की पीढ़ी अपने बुजुर्गों के दान-मान से प्राप्त उज्ज्वल साख पर यों ब्लैक कर रही है, जैसे कोई नालायक़ देवोत्तर सम्पत्ति से रेस के जुए में घोड़े दौड़ाए।

"आज के अक़्लमदों की रक़में कहाँ जाती हैं ? रेस में, रम में, रमूज में। वे रक़म जिन के प्राणों की बुनियाद में पुरुषार्थी पूर्वजों के पुण्यों की किरणें हैं :

> चिंता से चतुरई घटे दुख से घटे शरीर,
> पाप से लच्मी घटे कह गये दास कबीर।

"पागल नहीं थे दास कबीर, कम्युनिस्ट भी रूसी ढंग के वह नहीं थे। दुनिया में जो कुछ भी दृढ़ है, टिकाऊ है, वह तप और पुण्य पर ही प्रतिष्ठित है। तप और पुण्य पर जो प्रतिष्ठित नहीं, वही हैं— 'अम्बर-डम्बर सांझ को, बारू-की सी भीत।' जो लोग आज सिनेमा रेस, रम और रमूजों में पुण्य और धन का नाश कर रहे हैं उनके पुरुषों ने पुण्य और धन कमाया कैसे था? आप नहीं जानते। मैंने आंखों देखा है।

"इसी तुलापट्टी चितपुर के नाके पर आपके सामने सेठ घीसा-लालजी के दादा की और राजमलजी जयपुरिया के दादा की दूकानें थीं। घीसालाल के दादा कफ़न बेचते थे और राजमलजी के दादा 'काटन'—मगर, दोनों ही ईमानदारी का व्यापार करते, जिसमें मुनाफ़े का विस्तार सिमित था, अपार नहीं। पर कलिक्षेत्र, कुबेरक्रीड़ा-स्थल कलकत्ते में करोड़ कमाते कितनी देर लगती है? वे दोनों करोड़पति नहीं थे, फिर भी, बाज़ार में धाक या साख उनकी किसी करोड़पति से कम नहीं थी। बाज़ार में उनकी साख बैंक एकाउण्ट पर कम और 'महाजन-मिज़ाज' पर विशेष थी।

"अभी बोहनी नहीं—बट्टा नहीं। अभी-अभी दोनों सेठ आमने सामने की दूकानों पर आकर मज़े में बैठे भी नहीं थे, कि कोई कटवा या कसाई दो गायें और एक बैल लेकर चितपुर रोड से मछुआ की तरफ मुड़ा। उन दिनों सरकारी बूचड़ख़ाना न होने से मछुआ बाज़ार के कटुवे ही यह कर्म किया करते थे। कसाई के हाथ अनबोलते पशु को देखते ही एक या दूसरा या दोनों ही सेठ कटवे को बुलाते और सौ-दो-सौ जितने भी रुपये लगते लगा कर वे गोवंश का उद्धार करते। फिर गायों को गौशालाओं में भिजवाते। क्या मजाल, कि बहेलिये उनके सामने से गुज़रें और उनके पिंजरे ख़ाली न करा दिए जाएं। लोगों ने सेठों को समझाया कि उन्हें बना कर ठगने के लिए ही कसाई या बहेलिए आये दिन उनके सामने से पशु या पक्षियों को लेकर

गुज़रते रहते हैं।"—"उनका पाप वे जानें"—सेठ कहते—"हम तो सपने भी किसी जीव को कष्ट में नहीं देख सकते। जिस कमाई से किसी के प्राण बचते हों, धन्य है वह कमाई। धन तो हाथ का मैल है, मगर जीव, परमात्मा का अंश है।"

दोनों सेठ पहलवानों की तरह तगड़े, काठियावाड़ी बैलों की तरह मेहनती और मजबूत थे। और तब यातायात के साधन न होने से सेठानियां बहुत कम कलकत्ते आती थीं और सेठ कभी-कभी ६-६ साल बाद देश जाते; पर, क्या मजाल कि कोई बदफ़ैली हो—इधर या उधर। क्या मजाल कि दाहिना पहिया पुण्य-रथ के सत्पथ से छूटके या बांया। वे दोनों ही सेठ तन और मन दोनों ही से स्वस्थ रहने से राजस्थानी-रूप के प्रतीक-फोटू खींच लेने काबिल थे—एकनारीव्रतधारी, ब्रह्मचारी। वे सेठ नहीं, देखने में राजा मालूम पड़ते थे। उनका चित्र देखने के बाद आज के मारवाड़ी मालेमस्त आईने में अगर अपना मुंह देखें—तो आईना चिल्ला कर गा उठेगा कबीर का पद :

तेरे दया-धरम नहिं तन में मुखड़ा क्या देखे दरपन में
धोती ऐंठी, पाग संवारी तेल चुवे जुलफन में
गली-गली की सखी रिझाई, दाग लगाया तन में।
मुखड़ा क्या देखे दरपन में।

किसी को सुनाने और किसी के सुनने की पर्वा किए बग़ैर अपना सनकीला भाषण देकर छोगालाल जी मारवाड़ी जब घर चला तो दर्जनों चिरकुट छोकरे उसके पीछे प्रसन्न लग गये गगन और हृदयबेधी स्वर में समूहगान करते :

धोती ऐंठी पाग संवारी तेल चुवे जुलफन में...
गली-गली की सखी रिझाई दाग लगाया तन में।
"मुखड़ा क्या देखे दरपन में!!"

मदनू महाराजः ११

"अरे, तू यहाँ कैसे आयी ?"—सागरमल ने किंर्तव्यविमूढ़ पुत्र रामअवतार के आगे ही 'विधि न मीचु महि बीचु न देही' की स्थिति में अर्ध-मूर्च्छित अवस्था में पृथ्वी पर घूंघट काढ़े, सर झुका कर बैठी हुई पुत्रवधू मीरा से पूछा जिसका जवाब अभागिनी स्त्री ने कुछ भी नहीं दिया !

"आज वृन्दावन से मुझे तार मिला"—सागरमल ने सुनाया—"कि सात दिनों से तेरा कहीं पता नहीं था ! बहुत खोज के बाद भी जब पता न चला तब तेरी सास ने वहाँ से तार देकर आज मुझे सूचना दी थी !"

"इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं चाचा जी !"—मीरा ने कहा—"मैं जमुना नहाने जा रही थी, कि राहमें मुझे कुछ सुंघा कर बेहोश कर बदमाश लोग पकड़ ले गले ! हे भगवान्, मेरे बच्चे का न जाने क्या हुआ होगा !"

"वह मर गया !"—सागरमल ने सुनाया, साथ ही, मीरा चीत्कार कर रो पड़ी ! मारे ग्लानि के वह अपना सुंदर मुंह थपेड़ों से पीटने लगी और बाल नोचने लगी ! अब तक रामअवतार चित्र की तरह गम्भीर खड़ा; पर, स्त्री की करुण-स्थिति से वह भी विचलित हो उठा ! असिल में वह अपनी पत्नी से प्रेम करता था। मीरा के निकट जा, ढाढस बधाते हुए रामअवतार ने कहा—"इसमें तेरा तो कोई दोष नहीं। जान देने से न इज्जत लौटेगी और न मरा हुआ बेटा। हम-तुम हैं तो बेटे-बेटी बहुत होंगे ! उठ !"

"झूठ बात !"—सागरमल ने सक्रोध कहा—"अब यह औरत

मेरे घर के योग्य नहीं रही !"

"क्या ?"—आंखों से आग उगलता रामअवतार बोला—"नहीं रह सकती मीरा मेरे घर में ? क्यों ?"

"तू मुझसे कैफ़ीयत नहीं मांग सकता !"—सागरमल ने कहा—"बहस या विशेष बकझक की मेरी आदत नहीं। मेरे मते मीरा अब कुलीनों में रहने योग्य नहीं !"

"क्यों ?—मैं पूछता हूँ"—रामअवतार ने अधैर्य होकर कहा—"उड़ायी हुई औरतों की मलीन कमाई में कमीशन खानेवाले तो कुलीन हो सकते हैं; पर, अभागिनी औरतें .....!"

"चुप रह !"—धमकाया सागरमल ने—"ऐसी बातें न बघार, नहीं तो याद रहे ! मैं बाप को भी बख़्शने वाला नहीं—फिर बेटे की तो बात ही क्या ! यह पाप है, कुलवधू नहीं !"

"मीरा को मैं नहीं छोड़ सकता"—रामअवतार ने कहा—"इसमें कोई दोष नहीं। बल्कि आपके पापों से इसकी दुर्गति हुई है। क्योंकि बड़ों के पाप औलाद के आगे आते ही हैं ! दुनियाभर की बहू-बेटियों को उड़वा कर उन्हें वेश्या बनानेवाले को इससे बढ़ कर भगवान् और क्या दंड दे सकते थे, कि ख़ुद उसकी बहू-बेटी उड़ायी और वेश्या बनाई जाय ! इस दुर्घटना से आंख खुलनी चाहिए !"

"चुप रह !"—सागरमल ने कहा—"मैंने तय कर लिया है, कि यह औरत अब मेरे घर में नहीं रह सकती है। अब तेरे लिए एक ही राह है, या तो मीरा के साथ रह या मेरे घर में ! एक तरफ़ बेपानी हुई औरत है और दूसरी तरफ़ मुझ जैसे बाप की कमाई की मलाई ! बोल क्या मंजूर है तुझे ?"

"मैं मीरा को सारे विश्व की सम्पति के बदले में भी छोड़ नहीं

सकता''—रामअवतार ने कहा—''मैं इसे गंगाजल की तरह पवित्र मानता हूँ ! साथ ही, क्योंकि यह हमारे ही लोभ के कारण कष्टों में पड़ी है अतः मीरा मेरी आंखों में और भी उज्जवल हो उठी है !''

''तू इसे नहीं छोड़ेगा ?''

''नहीं !''

''ओ हरामज़ादे !''—सागरमल ने दांत पीस कर कहा—''तू नहीं जानता कि तेरा बाप क्या है ? मैं तुम दोनों को कटवा कर दिन दहाड़े हुगली नदी में फेंकवा दूंगा !''

क्रोधित, कम्पित, बिजली के स्विच-बोर्ड के निकट जा कर उसने एक प्लग दबाया। बाहर घनन-घनन घंटी बज उठी—अलार्म की तरह ! और थोड़ी ही देर में धड़धड़ाते हुए तीन बन्दूकधारी, वर्दीधारी रक्षक अन्दर घुस आये !

''इसको बांध कर कोठरी नं० ७ में बन्द करो !''—सागरमल ने कहा—''और इस औरत को कोठरी नं० १३ में बन्द करो।''

''आप मुझे दंड दीजिये !''—रामअवतार ने कहा—''पर बचिये परमात्मा के कोप से ! अबला, निरीह-नारी के मूक, मगर नीमतल्ला पहुँचाने की शक्ति रखनेवाली, आहों से बचिए। इसे भी मेरे साथ ही रखिए ! अलग रख कर इस पर और क्या अत्याचार आप करना चाहते हैं ?''

''कहा तो''—दांत पीस कर सागरमल ने कहा—''इसकी बोटी-बोटी अलग करा हुगली में फेकवा दूंगा !''

अभी सवेरा हुआ ही था कि सागरमल की मोटर हरिसन रोड और चित्तरंजन एवेन्यू की चौमुहानी पर। मोटर देखते ही काले रंग का कोई आदमी टेलीफ़ोन हाउस के पास से उसके पास आया—

''गौरी सिंह की जांच तो बहुत की गयी; पर उसका कहीं पता नहीं चला। सिन्धा बागान में नहीं, मछुआ बाज़ार में भी नहीं।''—काले आदमी ने सागरमल को संवाद दिया।

"अच्छा, जब भी वह मिले"—सागरमल ने कहा—"उसे मेरे पास फ़ौरन भेजो ! बोलो अरजंट काम है !—बहू बाज़ार चलो !" उसने ड्राइवर से कहा । बहू बाज़ार पहुँच कर एक गलीके नाके पर सागरमल ने मोटर रुकवाई और ड्राइवर को प्रतीक्षा का आदेश दे वह अकेला ही गली में घुसा । गली में चीनी या चीनाई लोगों की बस्ती । अनेक चीनी अपने दरवाज़ों पर यह-या-वह प्रातःकर्म करते । मगर, अधिकतर लोग ग़रीब—यह, बस्ती और निवासियों के चेहरों की पस्ती से स्पष्ट था ! बहुत दूर सीधे जाने पर सागरमल बाईं तरफ़ की एक गली में मुड़ा जो दुर्गन्धों से भरी हुई थी ! इस गली में तो बिज्जुओं की तरह आँखोंवाले, भूखे शिकारी कुत्तों की तरह खूंख्वार चीनी-ही-चीनी चारों ओर । और सबके सब सागरमल की तरफ़ यों देखते जैसे भेड़िये देखें किसी तुम्बा भेड़े को ! मगर, सागरमल पर उनका कोई भी असर नहीं । वह भयानक चीनी-गली में इस लापरवाही और निर्भयता से चला जा रहा था मानो न्यू मार्केट में चहल कदमी कर रहा है ! उसके चेहरे से स्पष्ट था, कि वह वातावरण से अपरिचित नहीं था ! गली में कोई हज़ार गज़ चलने के बाद सागरमल पुनः बायें मुड़ा । ऐसी बैक-लेन में वह पहुँचा जिसमें कदाचित् ही कोई गुज़रता रहा हो ! सौ गज़ चलने के बाद एक बन्द दरवाज़ा दिखाई पड़ा जिस पर उसने धीरे से थपकी दी । अन्दर 'खट' हुआ । । द्वार तो नहीं खुला, पर उसमें एक रुपये बराबर झरोखा खुल गया जिसके अन्दर से एक आंख बाहरवाले को सन्देह से ताड़ती नजर आयी !

"मैं हूँ, खोलो लुन चाई !"—सागरमल ने कहा । क्षण भर बाद ही दरवाजा खुला ।

"गौरो सिंह है ।"—चीनी ने सागरमल को बिना पूछे ही बतलाया—"दूसरी मंजिल पर मिलेगा !"

घर भयानक टूटा-फूटा, दूसरी मंज़िल पर पहुँचने के लिए काठ की सीढ़ियों से गुज़रता हुआ सागरमल मन-ही-ही-मन डर रहा था, कि कहीं सीढ़ियाँ उसके भार से चर्र-मर्र होकर बैठ न जायं। कम-से-कम वज़न डाल कर वह ऊपर पहुँचा। कमरे में झांकते ही गौरी सिंह नज़र आया किसी लम्बे-तगड़े आदमी से बातें करता। आहट पाते ही सिंह की तरह झपाटा मारने की नीयत से चमक कर गौरी सिंह ने सागरमल की तरफ़ देखा—"ओ हो! सागरमल सेठ! आओ, आओ! कहो कुशल मगल?"

"यह पहलवान जी कौन हैं?"—सागरमल ने पूछा, दूसरे आदमी की तरफ़ इशारा कर।

"यह हैं हमारे मिर्ज़ापुर के शेर बबर"—गौरी सिंह ने कहा—"और बस। इससे ज़्यादा परिचय गौरी सिंह जैसे पुलिस को नहीं दे सकता, वैसे ही, तुम जैसे बं-पुलिस को भी नहीं देगा।"

"मैं बंपुलिस हूँ?"—उदास सागरमल ने कहा—"तुम भी क्या बातें करते हो ठाकुर!"

"बंपुलिस तुम से अच्छा सागरमल"—गौरी सिंह ने कहा—"उसमें मल हो, बदबू हो, पर वह जुआ का, व्यभिचार का अड्डा तो नहीं चलाता? दूसरे के खून से पैसा तो नहीं बनाता? शहरों में बंपुलिस बढ़े तो सफ़ाई बढ़े......अच्छा, मगर, तुम जैसे लोगों को काट कर फेंक ही देना चाहिए। कहो, कैसे पधारे? किसी की हत्या करानी है? या कहीं डाका डलवाना है?"—इसके बाद मदनू महाराज की तरफ़ मुंह कर गौरी सिंह ने कहा—"लो महाराज! तुम्हारा भाग्य पाटी-जैसा लम्बा-चौड़ा। यह सेठ आ गये, तो समझ लो रुपये ही आ गये। क्योंकि, जब भी यह आते हैं किसी का खून ही कराने के लिए आते हैं। साथ ही, खरी मजूरी चोखा काम—रुपये तुरन्त देते

हैं।"—फिर सागरमल की तरफ़ देख कर गौरी ने पूछा—"कितने रुपये लाये हैं ?"

"एक हज़ार।"

"बाहर करो।"—सागरमल ने नोटों का बंडल गौरी सिंह को थमाया। गौरी ने सागर की अंगुलियों में से नोटों का बंडल यों झपट लिया जैसे गिद्ध मांस पर झपटे। नोटों की गड्डी मदनू के सामने फेंक कर गौरी ने सागरमल से कहा—"मगर, हज़ार रुपये में तो—हत्या—मैं नहीं करूंगा। काम क्या है तुम्हारा ?"

"एक औरत को जान से मार, काट, बोटी-बोटी कर, हुगली में बहा देना है। ऐसे मामूली काम के लिए एक हज़ार रुपये कम हैं ? क्या कहते हो ?"

औरत का खून करना है यह सुनते ही मदनू ने नोटों का बंडल अपने आगे से हटा कर गौरी सिंह के सामने कर दिया। इसे गौरी सिंह ने ताड़ा —"क्यों गुरू ?' गौरी ने पूछा—"ये रुपये तो आपही के हैं। सेठ के आने के पहले मैंने आपको वचन दिया था, कि पहला काम आज जो मुझे मिलेगा वह आपको दूंगा। बयाना लीजिये, बग़लें मत झांकिए।"

"छिः ठाकुर !" - मदनू ने कहा—"हमारे देश के मर्द औरतों के खून से घोर तपन काल की भी प्यास नहीं बुझाते; यह काम तुम्हीं करो।"

"काम तो तुम्हीं को करना पड़ेगा !"—गौरी सिंह ने दृढ़ता से सुनाया—"दक्षिणा अलबत्ता कम है।"—फिर सागरमल की ओर कड़ी दृष्टि से देख कर उसने कहा—"काम हो जायगा, मगर, दूसरे रुपये हज़ार—घंटेभर के भीतर—लेकर आओ तो ! एक घंटा से एक 'सेकेन' भी अधिक हुआ, तो ये रुपये हज़म और बोलोगे, तो ऊपर से

धमाधम । चले हैं हज़ार रुपट्टी में छत्रिय–बांभन से औरत मरवाने । किस दिन काम करना होगा ?"

"आज ही, रात को"—सागरमल ने कहा—"देर करने से ठीक नहीं होगा । बोलिए, मंजूर हो, तो रुपये पहुँचा जाऊँ ।"

"ले आओ !"—गौरी सिंह ने कहा—"मगर, यह तो बतलाओ, कि औरत किसकी है ?"

"तुम इन पहलवान जी का नाम बतलाओ ! बतलाओगे ?"

"हर्गिज़ नहीं"—गौरी ने कहा —"और बार-बार पूछोगे, तो बिना मारे छोडूंगा नहीं ।"

"वैसे ही, मैं भी औरत किस की है यह नहीं बतला सकता"—सागरमल ने कहा—"और, क्योंकि मैं गुण्डा नहीं हूँ, इसलिए धमकाता नहीं, कि फिर पूछोगे, तो यह कर दूंगा या वह ।"

"अरे सेठ"—गौरी ने कटाक्ष पूर्ण हंसी से कहा—"हम तो गुण्डे ही हैं, पर तुम गुप्त-गुण्डे हो । सांप के काटे की दवा हो, पर, सागर-मल के काटे की दवा लुकमान के पास भी नहीं । भागो !"

सागरमल के जाने के बाद गौरी सिंह ने फुसफुसा कर काफ़ी देर तक मदनू महाराज को क्या जाने क्या समझाया कि उसके सामने से नोटों का बंडल खींचते हुए मदनू ने कहा...

"वाह गौरी दादा ! खूब ! खूब ! ऐसा खून तो मैं एक नहीं पचास औरतों का कर सकता हूँ ! सो भी दाहने नहीं, बाएं हाथ से!"

—मदनू ने परम प्रसन्न सुनाया ।

"मक्कर वह शक्कर है" गौरी ने गर्व से कहा—"जिसके सहारे दुनिया रूपी यह भुंजिया चावल भक्षण के पहले मोठा बनाया जाता है ! तुम मुझसे विशेष बलवान हो मदनू महाराज—मैं झूठ नहीं कहूँगा —पर ऐसी तरकीब तुम्हें सात जन्म नहीं सूझती !"

"ज़रूर, ज़रूर गौरी दादा !"—मदनू ने कहा—"मैंने तो अपनी अकड़ में ये रुपये छोड़े ही थे, पर, तुम्हारी वजह से कलकत्ते आना ख़ाली नहीं गया मेरा। नहीं तो, मैंने तो यही सोच लिया था कि इस बार अपने भुखाये गूलर शायद ही फलें।"

"अरे ब्राह्मणों के हम दासानुदास हैं," विनम्रता दिखायी गौरी ने—"मेरा चमड़ा ब्राह्मणों के जूतों में लगा दिया जाय, तो भी मैं अपने भाग्य धन्य मानूंगा। अच्छा, अब मैं उस औरत की हत्या की सामग्री आपके लिए मंगा दूं, जिससे ऐन वक्त पर कुछ ढूंढ़ना न पड़े। ओ लुच्चा ! इधर तो आ !" गौरी सिंह चीनी लुन चाई को मिर्ज़ापुरी अकड़ से लुच्चा कहता था ! तुरन्त ही लुन चाई आया।

"देख, एक बोतल बकरे का खून चाहिए"—गौरी ने कहा।

"बकरे का खून ? होगा क्या ?"—पूछा टूटी हिन्दी में चीनी ने।

"मैं पीऊंगा ! बस, बहस न कर, नहीं तो मारते-मारते बकरा बना दूंगा ! अभी कोई जल्दी नहीं है, पर, ६ बजे शाम को अगर न मिला तो जानता है मैं क्या करूंगा ?"

"क्या करोगे ?"—पूछा लुन चाई ने।

"अरे !"—हाथ से गर्दन मरोड़ने का अभिनय कर गौरी ने ख़ूनी भाव से कहा—"तेरी गर्दन मुर्गे की तरह मरोड़ कर तेरे मुंह के रास्ते बोतल भर ख़ून निकाल लूंगा।"

ग़र्ज़ कि शाम के ६ बजे गौरी-मदनू टैक्सी में बैठ कर कलाकार स्ट्रीट पहुँचे। एक बड़े मकान के सामने टैक्सी रोकवा कर दोनों बाहर निकले। मकान के सामने ही सागरमल उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके चेहरे की बेचैनी से यह साफ़ नुमाया था।

"आ गये !"

"आ गये !"—गौरी ने कहा—"इन्हें साथ ले जाकर यह कोठरी

दिखा दो जिसमें वह औरत है !"

"काटने के बाद उसे वहां से हटाना भी तुम्हें ही पड़ेगा !"—सागरमल ने कहा ।

"बार-बार एक ही बात बक कर बेवकूफ़ी क्यों दिखाता है ?"—गौरी ने डांटा—"जो बात, जैसी, एक बार तय हो चुकी है, वह ज़र्रे बराबर फ़र्क़ के बग़ैर उसी तरह पूरी की जाएगी । काम करने के बाद लाश को ले जाएंगे, इसी लिए तो टैक्सी लेकर आये हैं ! मगर, कोठरी में जो ख़ून पसरेगा उसे हम नहीं समेटेंगे । इतना वक़्त नहीं है !"

"वह सब मैं अपने हाथ से कर लूंगा !"—सागरमल ने कहा । साथ ही मदनू को लेकर वह मकान में घुसा । मदनू के हाथ में एक थैला मात्र था ! दूसरी मंज़िल पर एक कोठरी दिखाते हुए सागरमल ने कहा—"यह ताली लो, उसी में उसे बंद कर रखा है !"

ताली हाथ में लेकर मदनू ने कहा—"अच्छा, तुम नीचे जाओ ! मैं पन्द्रह मिनट में काम कर लाश लेकर बाहर आता हूँ । ख़बरदार जो मेरे आने के पहले इधर आये—ख़ून करते वक़्त मेरे सर पर ख़ून चढ़ जाता है !"

"नहीं आऊंगा भाया, कभी नहीं आऊंगा ! मगर, देर न लगाना !"

सागरमल बाहर गया; साथ ही, मदनू ने बन्द दरवाज़े का ताला और कुण्डी खोला ।

ठीक पन्द्रह मिनट बाद एक बड़ा-सा गट्ठर बग़ल में दबाये मदनू बाहर निकला । गट्ठर, टैक्सी में, पीछे की सीट के नीचे रख कर मदनू अन्दर बैठ गया । गौरी सिंह ड्राइवर की बग़ल में रहा । क्षण भर बाद टैक्सी उस मकान से दूर, कलाकार स्ट्रीट के बाहर, हरिसन रोड की तरफ़ नज़र आयी । टैक्सी आंखों से ओझल होते ही सागरमल दो

मंज़िले के उस कमरे में भागा हुआ गया ! कमरे की ज़मीन पर चारों ओर .खून की पिचकारियां देख कर पहले तो उसने भयानक सन्तोष की सांस ली और फिर कमरे का दरवाज़ा बन्द कर, हाथ में झाड़ू ले, बाल्टी से पानी गिरा-गिरा कर वह कोठरी साफ़ करने लगा। कोठरी का .खून शायद १०, १५ मिनट में ही साफ़ हो गया, पर, सागरमल के मन में कुछ ऐसा भ्रम समा गया था कि वह जब भी ज़मीन की तरफ़ देखता—पृथ्वीलाल नज़र आती। और वह पुनः और पुनः और पुनः-पुनः कमरे का फ़र्श पोंछता रहा !!!

मीरा—— : १२

सागरमल के दरवाज़े से टैक्सी बढ़ते ही मदनू ने पहले गठरी खोली। ड्राइवर की बग़ल में बैठने पर भी गौरी सिंह की निगाह बराबर गठरी ही पर रही। खुलते ही गठरी में, लाश नहीं, अर्ध-मूर्च्छित कोई स्त्री निकली। संभाल कर मदनू महाराज ने उसे सीट पर सुला दिया।

"महारानी देखने में तो हज़ार में एक है"——गौरी सिंह ने मदनू से कहा——"इन्हें पहले सिन्धो लेनवाले मेरे मकान में उतार कर आप को छोड़ने के लिए हावड़ा स्टेशन चलूंगा—क्यों ?"

"मैं इन्हें भी अपने साथ ही ले जाऊँगा ठाकुर।"——मदनू ने कहा——"इनकी भी मुझे ज़रूरत है।"

"मगर, पंडित ! बात यह तय हुई थी"—गौरी सिंह ने गम्भीरता से कहा——"कि रुपये दो हज़ार तुम्हारे और औरत मेरी। इसे देखने के बाद अगर तुमने अपनी राय बदली, तो याद रखो पंडित, गुंडा ग़ारत होता है, तो औरत से। हमारे लिए दारू उतनी नुकसानदेह नहीं होती जितनी कि औरत।"

"फिर, तुम क्या करोगे लेकर इस सुन्दरी को ?"——मदनू ने मधुर ताने से पूछा।

"बेच दूंगा"——गौरी ने कहा——"इसे बेचने से ४-५ हज़ार से कम मुझे न मिलेंगे। मगर, तुम क्या करोगे पंडित ज़रा यह भी तो सुनूं ? तुम्हारी तो महारानी भी हैं।"

"अपने लिए नहीं"——मदनू ने सुनाया——"यह औरत मुझे अपने एक बनारसी दोस्त के लिए चाहिए।"

"तुम भी बेचोगे ?"

"नहीं; मुझ पर उसके अहसान हैं। साथ ही, वह अकेला और दुखी हो गया है तब से जबसे, उसकी पोष्य-पुत्री रूपा जवानी के जोश में यार के साथ घर से भाग गयी।"

"कौन है वह आदमी?"

"वह बनारस के कबीरचौरा मुहल्ले का रहनेवाला एक अधबूढ़ा कथक है। एकबार भारी ख़तरा उठा कर, अपने घर में आश्रय दे कर उसने पुलीस से मेरी रक्षा की थी। आज वह दुखी है, अकेला है। इस औरत को पाकर वह बाग़बाग़ हो जायगा।"

"अधबूढ़े को ऐसी अप्सरा देना अन्याय नहीं होगा क्या? क्या इस बेचारी की जान बुरी तरह फांसी ही लगाने के लिए बचाई गयी है?"

"मैं पूछता हूँ"—मदनू ने सावेश कहा—"तुम क्या इसे राजा इन्द्र के यहाँ बेचोगे? मैं इरादे का पूरा हूँ गौरी सिंह। इसे छोड़ूँगा नहीं—तुम्हें रुपये चाहिएं, तो ये दो हज़ार ले लो।"

"दी हुई चीज़ क्षत्रिय नहीं लेता।"—गर्व से गौरी सिंह ने कहा—"तुम ब्राह्मण हो। मैं तुमसे जीतना नहीं चाहता। रुपये भी तुम्हारे, रूपवती भी तुम्हारी। मगर मदनू महाराज! अगर अपने मित्र को न सौंप कर इस सुन्दरी को तुमने अपने संभोग का साधन बनाया, तो, मैं तो ब्राह्मणों को बख़्श देता हूँ, पर, काल किसी का मुलाहजा करने वाला नहीं है। अरे ये!"—"ड्राइवर को ललकारा रूक्ष गौरी ने—गाड़ी सीधे हवड़ा ले चलो। तूफ़ान मेल का वक्त हो गया है।" फिर गौरी ने मदनू से पूछा—"वह कथक करता क्या है? करेगा क्या इस औरत को लेकर?"

"करता है गाने, बजाने, नाचने का काम—कलावन्त है कमाल का। उसका अपना पक्का मकान है—घर में खानेपीने का माकूल सामान है। रहा प्रश्न यह, कि इस औरत को लेकर वह करेगा क्या ?

मैं तो उसके जान-लेवा सूनेपन में प्राण और प्रकाश की तरह यह सुन्दरी उसे सौंप दूँगा। इसके बाद वह क्या करेगा—मेरा विषय नहीं। अहसान करनेवाला भले ही शर्तें लगा दे, पर अहसान भरने वाला तो मात्र ऋण-परिशोधन कर सकता है।"

गौरी सिंह चुप रहा। हवड़ा पहुँच कर ट्रेन में इंटर क्लास में दोनों को बैठा, मदनू को प्रणाम कर वह वापिस लौट आया। गाड़ी चली। संयोग से इंटर के उस डिब्बे में उस वक्त कोई नहीं था। गाड़ी चलते ही प्रश्नभरी कजरारी बड़ियारी आंखों से मीरा ने मदनू महाराज को सरस देखा। पर मदनू आंखें बचा—शर्मा कर रह गया। बहुत देर तक दोनों चुप रहे। मदनू शायद अब भी न बोलता अगर मीरा ने स्वयं उससे प्रश्न न किया होता।

"कोई पूछेगा कि मैं आपकी कौन हूँ तो आप क्या कहेंगे?"

"मै कहूँगा"—मदनू ने कहा—"कि तुम मेरी बेटी हो।"

मीरा के चेहरे का रंग फीका पड़ गया। शायद मदनू से इस उत्तर की आशा उसे नहीं थी।—"और पुलीसवाले न मानें तब?"

"मेरी बेटी के बारे में मानने-न-मानने का हक़ पुलीस को ज़रा भी नहीं। मदनू पुआल का बंडल नहीं, न तो पुलीसवाले हाथी ही हैं, कि मुझे मनमाना रौंद डालेंगे।"

"मुझे आप कहाँ ले जा रहे हैं?"

"बनारस।"

"वहीं क्या आपका मकान है?"

"मेरा नहीं, मेरे मित्र का मकान है। वहाँ तुम्हें कोई भी कष्ट न होगा।"

"और आपका मकान?"

"वह तो मिर्ज़ापुर ज़िले के गांव में है।"

"मैं आप ही के मकान पर चलूं, तो ?"

"कोई हर्ज नहीं"—मदनू ने कहा—"मेरी पत्नी मेरा पूर्ण विश्वास करती है। तुम जैसे मेरी पुत्री हुई, वैसे ही, उसकी भी होगी; मगर, शहर की लड़की होने से काशी में तुम्हें विशेष सुविधा रहेगी।"

"शहर मैं देख चुकी। जी भर !"

"गांव में देखने लायक़ दृश्य दूभर !"

"आप तो होंगे......?"

"तुम गांव भी चलोगी—ज़रूर ! क्या नाम है तुम्हारा ? मगर रहना होगा मेरे कथक मित्र के साथ ही, काशी में !"

"नाम मेरा मीरा है। मैं मित्रवित्र के घर नहीं रहूँगी, महाराज !"—मीरा ने मदनू की आंखों से पुनः अपनी मादक आंखें मिलाईं ! मदनू ने पुनः आंखें बचाईं—"आंखें चुराने से काम नहीं चलेगा। जान जिसने बचाई मेरी जान उसी की हो सकती है !"

"टुनटुन कथक को देखोगी"—मदनू ने कहा—"तो प्रसन्न हो उठोगी ! वह बुरा आदमी होता, तो बेटी कहने के बाद मैं तुम्हें उसे कदापि न सौंपता। वह इतना नेकदिल, प्रसन्नवदन आदमी है, कि सारा मुहल्ला उसका आदर करता है। गुणी ऐसा, कि सारी इण्डिया में उसका झंडा लहराता है ! घर, ज़र, हुनर, आदर सभी तुम्हें वहां सहज ही मिलेंगे !"

"और आप ?"—औरत ने मर्द को पुनः गुदगुदाया—"तुम्हें बेटी कहा"—मदनू भी शंभू शरासन-सा अडिग रहा—"तो, सारी ज़िन्दगी, तुम्हारी खोज-ख़बर रखना मेरा कर्तव्य हुआ कि नहीं ! वैसे टुनटुन मेरा भारी दोस्त है, मैं अक्सर उसके घर जाता ही रहता हूँ ! तुम्हारे रहने से यह आवागमन और भी बढ़ जाएगा ! अब तो ख़ुश हुईं !"

"मैं आपको नाराज़ नहीं करना चाहती"—मीरा ने कहा—"मैं बनारस ही रहूँगी। पर, आप एक बात भूलेंगे नहीं।"

"क्या?"

"यही, कि दृढ़ पुरुष ही नहीं, स्त्री भी होती है।—मैं आपको भूल नहीं सकती!"

"जिस आदमी के यहां मैं तुम्हें ले चल रहा हूँ"—मदनू ने सत्य सुनाया—"उसे देखोगी तो बहुतों को भूल जाओगी!"

"क्यों?"

"क्योंकि, वह आदमी नहीं तमाशा है!"

बनारस कैंट स्टेशन से इक्के पर बैठ कर दोनों कबीर चौरा मुहल्ला आए। आगे मदनू और उसके पीछे मीरा मन्द गति से मुहल्ले में दाखिल हुए। अभी सवेरा हो ही रहा था। घर से बाहर निकलने वालों के चेहरे अधिकतर ऊंघते नज़र आ रहे थे। किसी-किसी मकान से सारंगी या सितार के तारों पर नाचते प्रभातकालीन राग या रागनियों के स्वर भी सुनायी पड़ रहे थे।

काशी के कबीर चौरा मुहल्ले में कथकों का आधिक्य होने से हमेशा ही राग-रंग के ढंग नज़र आते हैं! फिर, वह तो भोरहरी थी, जब ख़ास तौर से योग या अभ्यास या रियाज़ का वक़्त होता है! एक गली के बाद दूसरी में जब मदनू घुसा, तो नाके पर से ही सारी गली किसी के गले की गंभीर गमक से धमकती हुई मालूम पड़ी! मालूम पड़ता था, गोया हरेक मकाने से वही गान, वही तान, फूटा पड़ रहा है! एक जगह संगीत से मुग्ध मृगी की तरह ठिठक कर मीरा ने मदनू से कहा—

"ज़रा ठहर जाइये, इस आदमी का गाना बहुत ही मीठा है!"

"मैं—गानेवाले ही के यहां तो तुम्हें लिवा चल रहा हूँ!"—

मदनू ने कहा—"मगर, इस घर या उस घर या सारी गली में वह घर नहीं जहां से यह अमृत वर्षा हो रही है। वह मकान आगेवाली गली में है। फिर भी, देखो तो संगीत-योग! गवैया गा रहा है कहां और उसका प्रभाव कहां तक एक सम है! वह विनय का पद गाकर भगवति की स्तुति कर रहा है। यह गान, कुछ नहीं तो, सौ बार मैंने टुनटुन से सुना होगा, पर, जब सुनता हूँ तभी ऐसा लगता है, जैसे ऐसा कभी सुना ही न हो!"

तीसरी गली के मध्य में एक दरवाज़े के पास ही मदनू रुका—"गीत सुनना है, तो पहले सुन लो! इस तरह जमे हुए राग में विघ्न डालना भी ठीक नहीं!"

मीरा ने आंखों-ही-आंखों मदनू के मन्तव्य का अनुमोदन किया। स्तब्ध खड़े दोनों गान सुनने लगे—

दुसह दोष दुख दलनि,
करु देवि दाया।
विश्वमूलासि जनसानुकूलासि,
कर शूलधारिणि महामूलमाया।
तड़ित गर्भांग सर्वांग सुन्दर लसत,
दिव्यपट भव्यभूषण विराजैं।
बालमृगमंजु खंजनत्रिलोचनि,
चन्द्रवदनि लखि कोटि रति-मार लाजैं।
रूपसुखसीलसीमासि, भीमासि,
रामासि, वामासि, वरबुद्धिवानी।
छःमुख-हेरम्ब-अम्बासि जगदम्बिके,
शम्भुजायासि, जय-जय भवानी!

गान थमते ही मीरा और मदनू को वातावरण में वैसा ही परिवर्तन मालूम पड़ा जैसे कि एयर कंडीशन की मशीन के एकाएक फ़ेल हो जाने से उस कमरे या स्थान के रहनेवालों को मालूम पड़े। गायक के प्रभाव से उस ओर वे दोनों ऐसे कुछ विभोर हुए, कि उनके पीछे तीन छोटे लड़के आकर कौतूहलवश कब से खड़े थे इसका उन्हें कुछ पता ही नहीं। गान समाप्त होते ही एक विचित्र दर्द और पुकार, पराजय और आशाभरे-स्वर से गवैया ने पुकारा—"मातेश्वरी! माँ!!"

"ओ टुनटुन चाचा!"—मदनू-मीरा को चौंकाते हुए एक बच्चे ने आवाज़ दी—"जरा बाहर, तो देखो! कौन आया है?"

"मातेश्वरी सचमुच आ गयीं क्या लखना?"—अन्दर से विश्वास गद्गद्कंठ से सुनायी पड़ा, साथ ही, आवाज़ आयी—"मदनू महाराज!"

मदनू ताज्जुब से हैरान हो गया, कि अन्दरवाले को, दरवाज़ा बन्द होने पर भी, उसके आने की आहट लगी कैसे! तब तक साँकल की झंकार सुनायी पड़ी, दरवाज़ा खुला—"जय हो! जय हो! मदनू महाराज की!"—किसी प्रसन्न-वदन-व्यक्ति ने बाहर निकलते-निकलते कहा—"यह माँ है? है न? आओ अन्दर, बेगाने से बाहर क्यों खड़े हो? आओ माँ!"

"अजब आदमी हो तुम टुनटुन जी!"—आश्चर्य से मदनू ने कहा—"अन्दर ही से तुम्हें कैसे मालूम हो गया कि बाहर हम हैं?"

"सपना देखा था न...कसम सारदा की!"—टुनटुन ने श्रद्धालु भाव से कहा!

"सपना क्या?"

"देखा, कि मदनू महाराज कलकत्ते से आये हैं" टुनटुन ने कहा—"और कसम सारदा की! उनके साथ मेरी माँ आयी है।" अबटुन

टुन ने मीरा की ओर मजे में देखा—"धन्य हो मातेश्वरी ! हू-ब-हू वही शोभा !"—विह्वल वह गाने लगा अर्ध-स्वर में—"रूपसुखसील-सीमासि ! भीमासि ! रामासि ! वामासि ! बरबुद्धिबनी !"

मीरा ने देखा टुनटुन के गले में मोटे रुद्राक्षों का कंठा, माथे पर त्रिपुण्ड, दोनों भावों के बीच में रोली की गोली बिन्दी, एक ही रंग के दो बनारसी गमछों से अधढंकी देह, चुस्त कसरती काया, मोती से दांत, हंसता निर्दोष मुंह—टुनटुन चित्ता कर्पक आदमी !

मध्यम श्रेणी का दोमंजिला, मगर, बहुत साफ़ मकान । नीचे आंगन, कदम का फूला हुआ पेड़, कूंआ और कल । टुनटुन का घर मीरा की नज़र में मन्दिर के पिछे के उद्यान की तरह सुगन्धित, शान्त, विश्रामप्रद मालूम पड़ा । इस लक्ष्य को कनखियों से मदनू महाराज ने सन्तोष से ताड़ा ।

क्या ? आधुनिक अभागे समाज की लड़कियां सूर्य के प्रकाश में सूर्यमुखी की तरह खिलखिला कर निर्दोष हंस भी दें, तो बदनाम हो जाती हैं। उधर दूसरी ओर लड़के और नौजवान और अधेड़ और बूढ़े पुरुषों द्वारा ताजीरात हिन्द के सभी क्रिमिनल कानून तोड़ भी डाले जाएं, तो भरसक चर्चा नहीं होती। सो, बींसवीं सदी के उत्तरार्ध के आरम्भ में भी कहने मात्र के लिए नारी अर्धांगिनी—याने दक्षिण और वाम अंग बराबरी के अधिकारी हैं। व्यवहार में तो दाहिना हाथ दाहिना ही है और वाम–वाम ही। समाज नारी को आम याने कच्ची मिट्टी का घड़ा मानता है, किसी तरह का एक बूंद पानी भी जिसकी मिट्टी पलीत करने के लिए पर्याप्त हो सकता है। इधर पुरुष माना जाता है पक्का, चिकना, घड़ा...जिस पर सौ घड़े पानी का भी कोई असर सम्भव नहीं।

पुरुषों द्वारा चलाया गया स्त्री-स्वातन्त्र्य आन्दोलन भी मनोरंजक मात्र मालूम होता है—मनचले मर्दों का, नहीं तो, तथ्य तो यह है कि ज्यों ही ज़रा भी स्वतन्त्रता स्त्री चाहती है, त्योंही पुरुष के मन में अविश्वास अथवा बदगुमानियों का बवंडर उठने लगता है। स्त्रियों की निन्दा में भर्तृहरि ने लिखा है कि ये विश्वास कराती हैं, पर करती नहीं। भर्तृहरि का उक्त चित्र उनके युगका होगा। अब तो बात बिल्कुल उलटी हो गयी है। पुरुष बुरा-से-बुरा काम करते हुए भी चाहता है, कि स्त्री उसकी नेक नीयत और खसलत पर विश्वास करे, पर, उसी तरह स्त्री की नेक नीयत और तबीयत पर विश्वास करने को वह खुद तैयार नहीं। इस बात के प्रमाण एक, दो, चार नहीं, हज़ार-हज़ार

मिल सकते हैं। पुरुष राजतन्त्र, लोकतन्त्र, परलोकतन्त्र किसी भी चोले में व्यभिचार, ब्लैक या विविध बुराइयां करके भी समाज रूपी मजलिस में सरस जम सकता है जैसे 'जोरन' से दूध। उधर स्त्री पुरुष की तरफ़ स्वतन्त्रता से देख कर भी नष्ट हो जाती है, जैसे खटाई से दूध। पुरुष औरत को आम, जामुन, आलूबुखारे से अधिक नहीं मानता। रस चूस कर गुठली की तरह थूक देने की चीज़। स्त्रियों को लेकर जब पुरुषों की यही मनोवृत्ति है तब घीसालाल मारवाड़ी अपवाद कैसे होता? उसने तो अपनी पेचदार पगड़ी में सुधारक-सुर्खाब के पर भी नहीं खोंसे थे। पुराने और नये में घीसालाल पुराने युग का प्राणी था; ४२० भले ही, नये-से-नये ढग का रहा हो।

घीसालाल की मां ही नहीं दादी ने भी कलकत्ते में क़दम नहीं रखा था। उसकी पत्नी—पार्वती बाई की माता—गीता बाई यहां आयी भी, तो तब, जब घीसालाल की आयु का पचासा लग गया था। गोहन, मोहन, पार्वती सभी मारवाड़ में पैदा हुए थे। घीसालाल दो-तीन साल में एक बार देश बराबर जाता था। उधर, क्योंकि घीसालाल की शादी अधिक उमर में हुई थी अतः जब वह पचास साल का था तब उसकी पत्नी गीता मुशकिल से २६ वर्ष की रही होगी।

और गीता मारवाड़ के सम्पन्न घराने की बेटी, साध्वी और सुशीला थी। अनाचारियों को सदाचारियों के स्वभाव में अक्सर एक तीव्रता नज़र आती है; वैसी ही, जैसी कि प्रकाश की किरणों में अंधों को! मगर, बाहर से तीव्र दिखनेवाली वह शक्ति सत्य का सहज स्वभाव है। गीता स्वयं आचरणवाली होने से दूसरों से भी सदाचार की आशा रखती थी। साथ ही, निराशा होने पर उसे रोष हो आता था। रोष अगर दोष है, तो वह गीता बाई में था; मगर, नीति की हत्या पर ही वह उसमें प्रकट होता था।

हमारा ख़याल है, कलकत्ते वह फिर भी नहीं आती अगर घीसा-लाल की रमणी-रंजकता की चर्चा की दुर्गन्धित हवा 'देस' याने मार-वाड़ तक न पहुँच गयी होती। बुरी औरतों की बदनज़रों से अपने पति और सम्पत्ति को बचाने के लिए ही, घीसालाल की इच्छा के विरुद्ध, गीता कलकत्ते आयी थी। सो, उसका आना उसके पति को सुहाया-भाया नहीं। यह बात बुद्धिमती गीता की आँखों से छिपी न रह सकी; यद्यपि घीसालाल ने अपना भाव उस पर प्रकट नहीं किया था! अपनी उपस्थिति से अपने ही पति को विपत्ति में देख कर वह कुल-वधू, स्वाभिमानिनी, मन-ही-मन मुर्झा कर रह गयी, रूखे घाम में लज्जित लता की तरह। इतना ही नहीं, बहाना बना कर वह अपने बेटी-दामाद के घर चौरंगी चली गयी, इसलिये कि न कभी सामना हो न असन्तुष्ट चेहरे नज़र आयें!

"अपना घर छोड़ कर भागने से कहीं काम चलता है?"—मोहनलाल मुनीम की मां ने तीन बटे तेरह से आकर समझाया गीता को—"तुम वहां नहीं रहतीं बाई, तो चुड़ैलें रहती हैं।"

"चुड़ैलें?" गीता ने पूछा—"सती के पति के पास? क्या कहती हो सासू जी?"—मोहन मुनीम की मां को आदर से गीता बाई 'सासु जी' कहती यद्यपि एक किरायेदारिन थी और दूसरी मालकिन!

"मेरा नाम न लेना लाडी जी!"—मुनीम की मां ने कहा—"नहीं तो, मुझ गरीब के हाथ होम करते जलेंगे। जिस दिन मन हो, दस बजे रात के बाद आओ उस मकान में और अपनी आँखों देख लो हमेशा के लिए, कि चुड़ैल की शक्ल कैसी होती है?"

मोहन मुनीम की मां के चले जाने के बाद मारे मर्म-पीड़ा के गीता बाई मरने-सी लगी। बार-बार उसके मन में, शेरनी की तरह झपट कर, अनाचारी पति को तितर-बितर कर देने की भावनाएं भड़-

करने लगीं। मुनीम की मांसे तो उसने किसी और दिन आने की बात कही, पर, जैसे कोई घर में लगी आग को बुझाने का काम दूसरे दिन पर टालने में असफल हो; वैसे ही, वह अपने को रोकने में असफल रही। उसी दिन वह पौने ग्यारह बजे रात तीन बटे तेरह नम्बर के मकान में पहुँची। मगर उसके लाख थपथपाने, चिल्लाने, पुकारने पर भी घीसालाल ने दरवाज़ा खोला नहीं और उसे अपमानित, उधार, टके-सा मुंह लेकर लौट जाना पड़ा था।

"मेरा मर्द ऐसा हो, तो मैं उसका मुंह फूंक दूँ"—गुलाबी भंगिन की मां नर्मदा ने कहा था, दूसरे दिन सबेरे, जलकल पर एकत्र औरतों को सुना कर!

"तुम औरत नहीं आग हो।"—शुभकरण दलाल की सीधी स्त्री के मुंह से निकल गया।

"काहे को आग बनाती हो बाई सबेरे-सबेरे!"—नर्मदा ने नाराज़ी ज़ाहिर की—"मैंने तुम्हें तो कुछ नहीं कहा। मेरे मुंह से आग निकली होती, तो तुम जल-बुझतीं। यह भी कोई ज़ुबान है!"

"तू सरे बाज़ार सलाई दिखा कर मर्द का मुंह फूंके, तो ठीक; और मैं तुझे आग कहूँ, तो झूठ। नीच औरत की जात!"—शुभकरण दलाल की पत्नी ने नर्मदा के उत्तर से असन्तुष्ट हो प्रचंड प्रत्युत्तर दिया।

"मुझे नीच कोई ऊंच बननेवाली कहे, तो ठीक भी हो-शायद"—नर्मदा कब चुप रहने वाली थी—"पर सारी औरत जाति को नीच कह कर बहन, तुमने जो अपनी बड़ाई बतायी है उस पर भला मैं क्या कहूँ!"

"सच तो कहती है नर्मदा"—मोहनलाल मुनीम की मां ने कहा—"मर्द जब बिलकुल नामर्दी पर आ जाय तब उसका मुंह फूंकने ही

लायक हो जाता है। गीता बाई जैसी सती को त्याग कर वह पापात्मा जूठी पतरियां चाटना चाहता है, तो चाटे; पर, सती का अपमान करने का उसे कोई हक़ नहीं।"

"सचमुच गीता बाई स्त्री नहीं, मानवी नहीं, देवी हैं"—प्रह्लाद-घीवाले की पत्नी ने कहा—"इन-गिन कर पन्द्रह दिनों से अधिक तीन-बटे-तेरह में न रही होंगी, पर, एक-एक भाड़ैत की कोठरी में उनके पवित्र चरण दस-दस बार पड़ें। आते ही सब के सुख-दुख सुने, हमदर्दी दिखायी, सबको मिठाइयां बांटीं, बहुतों का वर्षों का भाड़ा, चोरी से अपनी अंटी से चुकाया।"

"गीता बाई दूधों नहायँ, पूतों फलें"—रघुनाथ पापड़वाले की पत्नी ने कहा—"वह तो मेरे बच्चों के भाग से ही देश से तीन-बटा-तेरह में पधारी थीं। हमारा भाड़ा सेठानी ने ऐन मौके पर न दे दिया होता, तो आज सेठ की निष्ठुरता से हमारी दुर्गति हो चुकी होती। ऐसी नेकदिल औरत जब कल यहां से रोकर चली गयी, तब मुझे ऐसा लगा, कि कहीं मैं मर्द होती, तो, ज़रूर, सेठ से मेरी फ़ौजदारी हो गयी होती!"

सचमुच अपमान की वह मात्रा गीता बाई के लिए अत्यधिक हो गयी थी। उसके सर में दुर्बल क्रोध उन्माद का रंग पकड़ने लगा! उसके मन में रह-रह कर मरने या......इच्छा होने लगी! धर्म, सतीत्व, ईश्वर, सभी उसे नारी-जाति के विरुद्ध पुरुष के षड्यन्त्र में शामिल मालूम पड़ने लगे। बुराई से बुरी तरह लथेड़ी जाने के सबब अच्छाई से उसकी श्रद्धा हटने लगी। वह घीसालाल से एक निश्चयात्मक युद्ध की कल्पना करने लगी।

और उसी वक़्त रात के वाक़ये से भन्नाया-भन्नाया हुआ—औरत को गुलाम समझनेवाला—घीसालाल आया। उस वक़्त पार्वती बाई

भी अपनी माता के पास किंकर्तव्यविमूढ़ बैठी हुई थी। आते ही सेठ ने पुत्री को वहां से टरकाया - 'तू ज़रा बाहर जा!'' मगर बाहर जाकर भी पार्वती बाई दूर नहीं गयी। दरवाज़े के पीछे दुबकी हुई, किसी अकांड-कांड की आशंका से अभिभूत जनक-जननी की बातें सुनती रही!

"देखो जी," घीसालाल ने कहा—"कल की घटना अगर फिर कभी तुमने दुहराई, तो मुझसे बुरा कोई नहीं।"

"क्या?"—मारे क्रोध के गीता बाई पुक्का फाड़ कर रोने लगी।

"हम यहां रुपये के लिए रहते हैं, औरत के लिए नहीं"—घीसा-लाल ने नाक पर नफ़रत नचाते हुए कहा—"हमारा आदर्श पत्नीव्रत नहीं, शेयर बाज़ार है। सो, जिस काम से भी बुद्धि बाज़ार-भाव समझने के योग्य हो, वही हमारा कर्तव्य है। कुछ लोग गांजा पीकर काम करते हैं, कुछ अफ़ीम खाकर; पर, मुझे औरतें ही अच्छी लगती हैं। तुम्हारी इतनी ही इज़्ज़त बहुत है, कि मैं दो-चार शादियां और नहीं कर लेता। तुम्हें मेरी हरकतें पसन्द नहीं आतीं, तो कलकत्ते रहती ही क्यों हो! ऊंटनी रेगिस्तान में ही प्रसन्न रहती है। जाओ तुम राजस्थान!"

"तुम अगर पत्नीव्रत निभानेवाले नहीं"—लाल होकर, दांत पीस कर, गीता ने कहा—"तो, सेठ, गीता भी पतिव्रता नहीं है।"

"क्या?"—घीसालाल को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो—"ऐसी बात तुम्हारे मुंह से निकल सकती है—नीच!"

"गाली देना मैंने अपने पूज्य पिताजी से सीखा नहीं"—गीता की आंखों में आंसू नहीं ख़ून डबडबा आया—"पर, जैसी बात मुंह से काढ़ कर मैं नीच बन सकती हूँ, वैसी ही बात बेधड़क बोलनेवाला मर्द क्या माना जायगा? क्या माना जायगा नित्य, निर्लज्ज आचरण करने

वाला ? स्त्री के पातिव्रत का फल अगर ऐसा ही पति है जैसी कि मेरी विपत्ति, तो आग लगे पातिव्रत के मुंह में ! पति की क़सम खाकर विश्वपति के सामने मैं बेख़ौफ़ कहने को तैयार हूं, कि मैं पतिव्रता नहीं हूँ। मेरे तीनों बच्चे तुम्हारे नहीं हैं !"

"तेरे बच्चे हमारे नहीं ? डाकन !"—घीसालाल अपने आपे के बाहर—"फिर किसके हैं ?"

"पहले आईने में अपना मुंह देखो !" गीता बाई के चेहरे पर आत्महत्या का संकल्प करनेवाली की शोभा !—"फिर मोहन, सोहन, और पार्वती का मुंह देखो ! और फिर सारी दुनिया में खोजते फिरो, सारी ज़िन्दगी, कि तुम्हारे बच्चों का मुंह किस पुरुष से मिलता है ! सेठ, तुम पत्नीव्रती नहीं, तो मैं पतिव्रता नहीं—हा हा हा हा !"

अब बात घीसालाल की बर्दाश्त के बाहर हो गयी। उसने झपट कर गीता बाई का गला दबा उसके मुंह पर थप्पड़-पर-थप्पड़ मारना शुरू कर दिया ! वह तो चिल्लाती-पुकारती पुत्री पार्वती बाई बीच में आ गयी; नहीं तो, सेठ ने सेठानी को और भी 'थूरा' होता ! फिर भी, गीता इतनी भावुक और नर्म थी, कि उतना ही उसके लिए प्राणलेवा बन गया ! बिना विषपान किए या फांसी लगा कर लटके, सबेरे ही वह अपने बिस्तर पर मृत अवस्था में पाई गई !

माता की वैसी मृत्यु से पार्वती बाई को चेतावनी की ठेस लगी। उसे अपनी माता के आचरण और उसकी पवित्रता में पूर्ण विश्वास था। अपने पिता को भी वह अच्छी तरह जानती थी। उसे लगा, कि इस दुनिया में सीधे का मुंह कुत्ता चाटता है। यहां दो ही धन्धे हैं— मारना या मरना। जो मार नहीं सकता, वही मारा जाता है ! आज जो उसकी मां पर गुज़री वही कल उसके भाग में भी बदी हो सकती है।

क्योंकि, निर्दोष, स्वतन्त्र स्वभाव में भी उसका पति भंवरलाल दोष की दुर्गन्ध सूंघता था !

कुछ लड़कियाँ सबसे लजाती हैं। उनको समझना बहुत मुश्किल ! दूसरी लड़कियाँ किसी से नहीं लजातीं—उनको समझाना बहुत मुश्किल ! पर, इसका यह अर्थ कदापि नहीं, कि सदा सुप्रसन्न लड़कियाँ बुरी ही होती हैं—जैसी कि 'हंसी-सो फंसी' कहावत है। लजानेवाली लड़कियां घूंघट के भीतर हृदय नहीं रखतीं या हृदय के अन्दर उसके सारे गुण दोष—यह भी कौन मानेगा ? फिर भी, लजीली ललनाओं से प्रसन्नवदन युवतियों का मार्ग अधिक कंटकाकीर्ण होता है—आज के कलमुख समाज में ! घूंघट खोलने ही से लड़की आवारा ! और कहीं बोल-हंस पड़े तब तो उसके चरित्र का वारा-न्यारा ही समझिए ! सुबह-शाम-तक विविध ब्लैककर्म-रत-पुरुष कल्याणमयी देवियों को सदा सन्देह से ही देख कर केवल अपने हृदय के कलुष का परिचय देता है। मगर, क्योंकि पशुत्व में पुरुष प्रबल पड़ता है, अतः उसकी चल जाती है और क्योंकि स्त्रियां अधिक कोमल हैं, नरम हैं, सभ्य हैं, अतः वे कष्टों में रहती हैं !

फिर भी, मसल मशहूर है—'अतिसय रगड़ करे जो कोई, अनल प्रगट चन्दन तें होई !' पुरुष की मूर्खता सीमा पार कर गयी। पिसते-पिसते, घिसते-घिसते, अबल नारी-स्वभाव से भी प्रबलता के स्फुलिंग निकलने लगे हैं ! कोई कहेगा कि यह 'हीट वेव' पश्चिम से आ रही है, याने मर्दों की मनमानियों के विरुद्ध मनस्विनी महिलाओं का यह मोर्चा इतिहास में पहली बार पश्चिम में ही लगा है। पर 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ जिनके निजी देवालयों में वर्ष में कम-से-कम अठारह दिन याने दोनों नवरात्रियों में होता है और विश्वनाथ शंकर को चरणों के नीचे चांपे विकराली-काली माता का चित्र

जिनके मनोमंदिर में भक्ति के प्रेम में मढ़ा हुआ सुशोभित है, उन्हें देवियों का भवानी-रूप आज नहीं तब से मालूम है जब पश्चिमवाले सभ्यता के 'स' से भी अपरिचित याने जंगली थे। 'दुर्गा सप्तशती' के अनुसार देवता जब असमर्थ हो गए दुष्ट दैत्यों से स्वर्ग की देवियों की रक्षा में तब अबलाओं को अपना बल खोजना पड़ा, असबल का संबल। देवियों को दल बना कर अपने भुजबल से प्रबल दैत्य दल का निर्दलन करना पड़ा। राम ने तो बाद में तोड़ा था, पौराणिक-कथा के अनुसार उसके बीसियों वर्ष पहले जहाज की तरह वज़नी शिव धनुष्य को, घर साफ़ करते वक्त, जनकनन्दिनी ने ऐसे सरका दिया था जैसे तिनके को सरकाये पवननन्दिनी। कैकैयी ने विपत्ति-ग्रस्त पति दशरथ के टूटते रथ में अपनी समर्थ बाहु धुरी की जगह लगा दी थी। आदिकाल से आज तक महज़ सभ्या होने से नारी अबला है, अन्यथा ऐसा कौन-सा क्षेत्र होगा जहाँ उसकी मूक सेवायें नहीं। पुरुष बकता बहुत है, करता कम; महिलाएं युगों से आज तक चुपचाप करती ही आ रही हैं। बोलने का अभ्यास तो अभी कल से कुछेक ने शुरू किया है।

ऊपर इतनी बातें कही गयी हैं केवल यह कहने के लिए कि सीता की पुत्री पार्वती बाई युग के नव-जागरण की वह ज्योति थी जिसकी जगर-मगर आज नगर-नगर और डगर-डगर 'बगरी' या बिखरी हुई है। मेरा मतलब उन लड़कियों से है जिनका मिज़ाज उनकी जननी तक नहीं जान पातीं। जैसे, गर्म बिजलियों का स्वभाव ठण्डी हड्डियों की समझ में न आवे। बला से बिजलियां हड्डियों से ही निकलती हों।

मायके लाड़ में पली लड़कियां ससुराल में जाते ही अगर अपने व्यक्तित्व को हलाल न कर डालें, तो और भी हलाल की जाती हैं। कल तक सबसे 'पिट-पिट' बोलनेवालियों के मुंह सी दिए जाते हैं।

ज़रा भी मुंह खोलने पर उन्हें बेशर्म और बेशऊर बताया जाता है। पिता के परिवार-रूपी हरे-भरे बाग़ में अभी कल तक तितलियों की तरह सहज स्वतन्त्रता के पर मारनेवाली भोलीभाली चिड़ियों के पर पाखंडी सदाचार के कराल क़ैंचों से काट दिए जाते हैं। और तानों तथा व्यंग-बाणों से भी जिस लड़की का व्यक्तित्व नष्ट नहीं हो पाता उसके चरित्र पर पहले बाहरवाले, फिर घरवाले, यहां तक कि २४ घंटे सामने रहनेवाला पति तक सन्देह करने लगता है।

पार्वती बाई इसी निराधार आचार की शिकार अपने सन्देही भर्तार द्वारा व्याह होने के पहले ही वर्ष में ३६५ बार हुई। घीसालाल ने ग़रीब मगर दिखनौट और चतुर भंवरलाल को बेटी देकर घर-जमाई बना लिया था। इससे, हमेशा, पार्वती के सामने उसके मन में एक प्रकार की लघुता का भाव रहता। जिसकी प्रतिक्रिया में, अकारण ही, वह अपनी पत्नी पर सन्देह करता। पार्वती—नैहर हो या सासुर—सबसे बोलती, सभी के सामने सुप्रसन्न बसती थी यों जैसे वह सभी की 'अपनी' थी, बेगानी किसी की भी नहीं। उधर भंवरलाल का ईर्ष्यालु-मन पत्नी का सब कुछ—हंसी-खुशी, दया-मया-अपने ही लिए चाहता था।

भंवरलाल के संस्कार मारवाड़ के, पार्वती का परिष्कार कलकत्ते का, दामाद बन कर कलकत्ते आने तक 'स्त्री' के बाद उसने 'पर्दा' सुन रखा था। अतः, व्याह के प्रथम वर्ष के ३६५ दिन पति और पत्नी के ग़लत फ़हमियों में बीते। पार्वती ने पति की प्रसन्नता के लिए न तो अपनी सहेलियों को छोड़ा, न सहेलों को और न निर्दोष, प्रसन्न, प्राण-प्रद खेलों को। मृत महाराज याने विधवा राधा बाई के पति के साथ वह बचपन में खेली हुई थी, सो उसके साथ बिना कुछ गपशप किए पार्वती बाई की रोटी नहीं पचती थी। कुछ लोग भोले या विनीत या

प्रसन्न मिज़ाज होने के सबब प्राय: सर्व--प्रिय होते हैं। महाराज वैसा ही था। अपने बाप के वक्त से ही घोसालाल के परिवार से सम्बन्ध होने से रसोइया होते हुए भी महाराज 'परिवारी' था। महाराज और पार्वती के बारे में भंवरलाल ने ज़रा भी सब्र से काम लिया होता, तो, उसे यह तथ्य जानने में कठिनता न होती, कि सौहार्द्र होते हुए भी उनमें वह प्रेम नहीं था जो पुरुष और स्त्री में--पागल--होता है।

फिर भी—गुलाब भंगिन ने कुछ भी कहा हो—हम यह फ़तवा देने को तैयार नहीं, कि राधा के पति को भंवरलाल ने तीन-बटे-तेरह के नीचे गिराया होगा। क्योंकि महाराज की हत्या से भंवरलाल का भला कुछ भी न हो सका। पार्वती का मिज़ाज ज़रा भी न बदला। उलटे महाराज के मरण से आजतक वह अपने पति से मुंहभर बोली तक नहीं। घीसालाल के मांसल मुंह में सोंधी मलाई की तरह, घुलने को मिल गई बिचारी विधवा युवती राधा बाई—मृत महाराज की नववधू।

तो क्या घोसालाल की चुटकी पर भंवरलाल ने अभागे महाराज की हत्या करायी थी?

"क्या दिल्लगी लगायी है ?"—पुलिस के टार्चों में नशीली आंखें मिचमिचाता हुआ पहले मोहनलाल मोर्चे पर आया,—"यह मेरा अपना घर है। इसमें तुमको घुसने किसने दिया ?"

"घबराइये नहीं,"—गांगुली ने कहा—"आज हम लोग आथस्स या कुटनख़ानों की टोह में निकले थे।"

"मगर, सद्गृहस्थ का घर कुटनख़ाना नहीं,"—मोहन ने कहा—"यह मेरा घर है।"

"कुटनख़ाना नहीं ?"—गांगुली ने कहा—"ईश्वर करे, आप जैसे सद्गृहस्थ का घर कुटनख़ाना कदापि न हो। हमने नेकनीयती से, समाज संशोधन की नज़र से ही, छापा मारा है। इतने लोग, इतनी रात गए, इतने नशे में, इतने नग्न !"—कुछ लोगों को कपड़े संभालते देख काली-पदो गांगुली ने डाट कर कहा—"ये ! जो जैसे है, वैसे ही रहे। इसी तरह तुम लोगों को पुलिस स्टेशन ले जाया जायगा।"

इसी वक़्त अवसर-कुअवसर पहचान कर साधु ने भागने की कोशिश की, तो, दूसरे पुलिस अधिकारी ने पिस्तौल दिखाकर उसे रोका। पुलिस की तड़प और पिस्तौल देखते ही बातें करते-करते मोहनलाल हकलाने लगा !

"फ़्लैश केमरा !" आर्डर दिया गांगुली ने—"इनके दो-तीन चित्र लिए जायं—इस साधु पाखंडी और बूढ़ी रंडी के भी !"

"मुझे मुक्त कर दो बच्चा !"—व्याकुल बाबा ने हाथ जोड़ कर कहा—"मैं तो माया में फंसाया गया हूँ।"

"तो इसमें बुरा क्या है महाराज !"—गांगुली ने व्यंग किया—

"दुनिया ही माया है ! कृपया अब अपनी माया उस लुङ्गी के निकट ले जाइये जिसमें माया और माया मच्छीन्द्र की छवि एक साथ उतारी जा सके !"

"हम लोग शरीफ़ हैं. हमें यहाँ से थाने ले जा कर, हमारी फ़ज़ीहत का फ़ोटो खींच कर, आप हमारा भविष्य चौपट न करें—हाथ जोड़ता हूँ !"—एक युवती के निकट अधनंगा खड़ा एक युवक मस्त-मुद्रा से बोला।

"तुम्हारा नाम ?"

"कौड़ीमल नाथानी !"

"तुम्हारा—?" दूसरे युवक से पूछा पुलिस ने। इसका उत्तर थर-थर काँपते उस युवक ने उस स्वर में दिया जिसमें बुक्का फाड़ कर रो पड़ने की धमकी भरी पड़ी थी—"मेरा नाम मुरलीधर मूँदड़ा है। इन्सपेक्टर साहब, मैं आपको हज़ार रुपया, रिस्ट वाच, सोने के बटन और सिकड़ी देने को राज़ी हूँ। आप यहाँ की बातें मेरे बाप से न कहिएगा। नहीं तो, वह मुझे घर से निकाल देंगे !"

"तुम्हारा नाम ?"—तीसरे से पूछा गांगुली ने।

"कल्लूमल केडिया।"

"अच्छा, कपड़ों के मशहूर मर्चेंट कल्याणमल जी केडिया के आप साहबज़ादे हैं ? तुम्हारा नाम ?"—पूछा चौथे मारवाड़ी तरुण से गांगुली ने।

"मेरा नाम है मंगनीराम बजाज।"

"तुम्हारा ?"

"सोमनाथ सोमाणी !"

"समझा, देखता हूँ आधे बड़ा बाज़ार के धनिक कुलांगार एक ही जगह !"—बुरा मुँह बनाया सखेद कालीपद गांगुली ने। मगर, कम-

पढ़े कल्लूमल केडिया ने कुलांगार का अर्थ 'कुलीन' समझा !

"सभी—हम सभी कुलांगार, शरीफ़, भले ख़ानदान के हैं।"—कायर चापलूसी की उसने—"कृपया हमारी इज़्ज़त—!"

"तुम्हारी इज़्ज़त ही क्या ?"—गांगुली ने समक कर पूछा—"बाप दादों की गाढ़ी कमाई बरसाती पानी की तरह गन्दी नालियों में बहानेवालों की इज़्ज़त अगर होने लगे, तो, मैं पूछता हूँ, बेइज़्ज़ती किसकी होगी ? मि० साहा,"—गांगुली ने साथ के इन्सपेक्टर से कहा—"मिहरबानी करके इन सभी नौजवानों के बुज़ुर्गों को पहले टेलीफ़ोन कर दीजिए, जिससे थाने ले जाने के पहले वे भी आकर देख लें कि केस है क्या ?"

"मगर, सारजंट साहब !"—अब शबनम की मां लज्जा का कफ़न फाड़कर अपने सहज रूप में आ चली थी—"हम फ़िल्म आर्टिस्ट सभी शहरों में जाते रहते हैं, पर, ऐसी ज़बरदस्ती तो हमने कहीं नहीं देखी !"

"सब शहरों की पुलिस अगर जीती मक्खी निगलने लगे, तो वही हम भी करें, यह कहां का इन्साफ़ है ?"—गांगुली ने बिना घृणा या क्रोध के सुनाया—"फ़िल्म आर्टिस्ट के सुर्ख़ाब के पर नहीं लगे होते। मैं नहीं मानता कि अच्छे आर्टिस्टों का वही प्रोफ़ेशन होगा जो आप लोगों का है। और अगर सभी फ़िल्म आर्टिस्ट इसी नमूने के हैं, तो वे दिन दूर नहीं, जब उन्हें अच्छे शहरों में घुसने नहीं दिया जायगा !"

"आग लगे ऐसे अच्छे शहर में !"—शबनम की मां के मुंह से घृणा के आवेग में निकल गया—"मुझे और मेरी बेटी को बख़्शिए, हम पहली ट्रेन से—या आप कहें तो—हवाई जहाज़ से, बम्बई भाग जायेंगे !"

"आपको तो मैं नरक़ तक न छोड़ूं"—गांगुली ने दृढ़ता से कहा—"इस उम्र में भी आप खुद-ब-खुद गड्ढे में गिरती हैं, साथ ही, कमसिन लड़कियों का भी सर्वनाश कराती हैं ! मैंने पहले ही तय कर लिया है, कि सिवा आपके और एक भी औरत को इन बदमाशों के साथ पुलिस स्टेशन पैदल नहीं ले जाऊंगा । नारी जाति का अपमान मैं नहीं करना चाहता—पर, आप नारी नहीं हैं, वैसे ही, जैसे आपका यह पाखंडी संगी साधु नहीं है !"

"मुझे माया में फंसाया गया,"—साधु ने सभय सुनाया—"मैं यहाँ बहका कर लाया गया हूँ । भगवान् के लिए साब,' मुझे मुक्त कर दो ।"

इसी समय सोमाणी, नाथानी, केडिया, मूधड़ा, बजाज सभी तरुणों के बूढ़े, अधबूढ़े बुज़ुर्ग घबराते हुए, कमरे में दाखिल हुए ।

"छोरे जैसे हमारे हैं वैसे आपके भी हैं गांगुली जी"—कल्याणमल केडिया ने कहा—"यह उम्र ही ग़लती करने की है । आप अपने आदमी हैं, माफ़ कर दीजिए ।"

"ऐसे कुकांड कलकत्ते के मनचले पूंजी—पुत्र शहर में और बाहर करते ही रहते हैं । अब मामला यहाँ तक तूल पकड़ गया है, कि रोक-थाम न हुई, तो—कलकत्ता ही नहीं—सारे सूबे में दुराचार की दुर्गन्ध द्वारा दुष्ट-रोग फैल जायेंगे । दण्ड का भय न होने से शासन की जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं ।"—गांगुली ने गम्भीर-भाव से स्पष्ट किया ।

"ज़रा इधर सुनिए गांगुली जी"—सीताराम सोमाणी ने पुलीस अधिकारी को ज़रा अलग ले जाकर सुनाया—"बात क्या है ? हम आपसे बाहर कब हैं । पांच हज़ार ले लीजिए और मेरे नालायक को छोड़ दीजिए ।"

"मज़ाक़ करते हैं !"—गांगुली ने कहा—"रुपये की क्या ज़रूरत

है ? हम तो समाज के वेतन-भोगी सेवक हैं । सभ्य नागरिक हमारा मालिक है ।"

"अच्छा सात हज़ार ले कर"—सीताराम सोमाणी ने कहा— "आप मेरे और नाथाणी जी के लड़के को छोड़ दें ।"

"आप भी क्या बात करते हैं, सेठ जी !"—गांगुली ने कहा ।

"अच्छा"—सीताराम सोमाणी ने कहा —"दस हज़ार रुपये में सब को छोड़ दीजिए । चलिए, होलसेल सौदा तयकर लीजिए ।"

इसी समय राजमल जयपुरिया व्यापारिक-मुस्कराहट से लैस कमरे में दाख़िल हुआ—"टेलीफ़ोन मुझे 'जगरनक' कार्यालय में मिला क्या है गांगुली बाबू ?"—लम्बे हाल में एक नज़र देखने के बाद जयपुरिया को परिस्थिति परखने में देर न लगी । अब गांगुली को दूसरे कमरे में ले जाकर धीरे-धीरे बातें करने की बारी जयपुरिया की थी । उन दोनों में कोई पन्द्रह मिनट तक गंभीर कानाफूसी चलती रही । इसके बाद सोमाणी, नाथानी, केडिया, मूधड़ा और बज़ाज सभी सेठ परामर्श में शामिल हुए । जैसे कोई बात तय हो गयी । गांगुली ने अपने साथी अलीपुर पुलीस स्टेशन इंचार्ज अफ़सर और महिला पुलीस से कहा—

"आप लोग पुलीस स्टेशन चलें, मैं अभी आता हूँ ।"

पुलीस के जाते ही गाँगुली ने मारवाड़ी तरुणों, फ़िल्म एक्ट्रेसों, शबनम की अम्माँ और साधु से तुरन्त वहाँ से चले जाने को कहा । मुक्ति पाते ही वे पागल विलासी सिर-पर-पाँव रख कर पलाते नजर आए । उनके जाने के बाद सेठों से दुआ-सलाम कर कालीपदो गांगुली भी बंगले के बाहर हुआ । पुलीस के जाते ही सोमाणी ने लज्जित खड़े मोहन और सोहन को सम्बोधित करते हुए कहा—

"देखा ! इसीलिए फ़िल्म का धन्धा अच्छे मारवाड़ी नहीं करते, यह

पता होने पर भी, कि इस रोजगार में तीन सौ और पाँच सौ प्रतिशत बचत है। तू ने अगर यह ख़राब धन्धा न किया होता, तो आज हम सबके लड़के इतनी आसानी से ऐसे पक में न फंसते। किस काम का वह अधिक मुनाफ़ा जिसे संभाल कर बचाया न जा सके? तेरे बाप घीसालाल को भी फ़िल्म का धन्धा पसन्द नहीं है। जो घाटा-मुनाफ़ा हुआ उसको भुला और छोड़ इस धन्धे को!"

"धन्धे में दोष नहीं होता चाचा जी"—मोहन ने कहा—"दोष होता है या नहीं इसका पता तो तुम लोगों को अभी चल गया होता अगर हम लोगों ने बीच-बचाव न किया होता। तुम्हारे फ़ोटो लिए जाते वेश्याओं के साथ, पशुओं की तरह परिधान-हीन और इसके बाद यहाँ से पुलीस स्टेशन तक तुम लोग पैदल ही हंकाये जाते हुकूमत के हंटरों से। धन जाता अलग, इज्ज़त अलग। फिर तो फ़िल्म की कमाई के सारे अंक व्यय हो जाते और हाथ लगते कोरे शून्य। वह लक्ष्मी माता है जो कमानेवाले के घर में कुछ तो ठहरे; मगर, डाकिनी है वह लक्ष्मी जो आते ही चली जाय और आवे तीर की तरह तो निकले त्रिशूल की तरह। ऐसी लक्ष्मी की उपासना से मारवाड़ी महिमा मंडित नहीं हुआ है। ऐं ...!"

दरवाजे से 'जगरक्षक' के संचालक घमंडीलाल को अन्दर दाख़िल होते देख सभी चौंक पड़े; वैसे ही, जैसे चूहों का झुंड मरियल बिल्ला देख कर चमके।

"चुड़ैल गई तो जिन!"—नाथानी ने कहा—"इस साले ने कहाँ से सूंघ लिया इस मौक़े को?"

तब तक तो घमंडीलाल सामने!—"जै राम जी की।"—कहा उसने—"सब लोग चले गए क्या?"

"कौन लोग?"—केडिया ने पूछा।

"पुलीस वाले, प्रास्टिच्यू और आप लोगों की लायक़ औलाद"—घमंडीलाल कह पड़ा—"दायी से पेट छिपाना व्यर्थ। अख़बारवाले को सब पता लग जाता है। इधर आप पुलीस को जब पुष्कल-पुरस्कार पर पटा रहे थे तब 'जगरक्षक' कार्यालय के कंपोज़िटर यहाँ की सारी घटनाओं को अक्षरशः कंपोज़ कर रहे थे। यह देखिए, प्रूफ़ मेरे हाथ में हैं। छीनिए नहीं। हाथ में नहीं दूंगा। नमूना अवलत्ता सुन लीजिए। लंबी ६ कलमों हेडिंग है...मद्यप मारवाड़ी का घर कि कुटनख़ाना?"

"अरे' ओ घमंडीलालजी!"—सीताराम सोभाणी ने कहा—"यह समाचार तो भाया नहीं ही छपना चाहिए। इज्ज़त का सवाल है। लड़के जैसे हमारे वैसे आपके।"

"समाज की स्वच्छता का जहाँ पर प्रश्न आता है वहाँ पर व्यक्तिगत सम्बन्धों का विचार विवेकी कदापि नहीं करते।"—सत्य के घमंड से नथने फुला कर घमंडीलाल ने कहा—"हमारा-आपका पर्सनल सम्बन्ध है। कौन नकारता है! घमंडीलाल एम० ए० से आप जो चाहें सेवा ले लें; पर, 'जगरक्षक' के मामले में दस्तन्दाज़ी करनेवाला मैं कौन? पत्र जनता का होता है और उसी जनता को आज-जैसी सबक़ लेनेयोग्य घटना न बतलाना विश्वासघात करना होगा। मैटर कम्पोज़ हो चुका है, मशीन चलाई जा चुकी है। समाचार का दूसरा शीर्षक है—धनिक-पुत्रों द्वारा जीवित पितरों को पुलिस—पिंडा पानी!"

"अब भाया-बस!"—कल्याणमल केडिया ने कहा—"जीते ही हमें पिंडा-पानी न दिला। तेरा भी जो लेना हो ले ले—दस, बीस, पचास? क्या लेगा?"

"सैकड़ों रुपये तो कम्पोजिंग वगैरह में ही ख़र्च हो गए हैं!"

"तो-सौ ले ले!"

"और प्रूफ़ का ?"

"सौ उसके भी सही।"

"और फ़र्मे की कसाई का ?"

"उसके भी सौ...!"

"और मशीन ? उसमें स्याही लगी, काग़ज़ लगा, बिजली लगी, इस संवाद के संग्रह में हम कम सर्फ़े में नहीं पड़े...सेठियो !"

"अच्छा भाई, सौ मशीन के भी !"

"यहां तक तो सब ठीक,"—सन्तुष्ट भाव से घमंडीलाल ने कहा—"पर, मेरी भी तो कोई क़ीमत होगी ? मैं जो आफ़िस से अलीपुर और अलीपुर से 'जगरक्षक' आफ़िस की दौड़ लगा रहा हूँ; वह यों ही पागल कुत्ते ने मुझे काटा है ? फिर मेरी क़ीमत क्या है ? क्या लगाते हैं आप लोग मेरी क़ीमत ?"—बड़ी आशा से घमडीलाल ने मुट्ठी में फंसे धनकुबेरों की तरफ़ देखा—"बोलिए, क्या है मेरी क़ीमत ?"

"दो कौड़ी !"—मूंधड़ा ने कहा।

"ज़ुबान संभाल कर बोलिए,"—बिगड़ा घमंडीलाल मूंधड़ा पर—"फ़र्मा मशीन पर चला गया है, मशीन चलाई जा चुकी है...इधर दो कौड़ी के लोग मेरी क़ीमत दो कौड़ी लगा रहे हैं, चला मैं !"

"अरे भाई"—नाथानी ने कहा—"मैं कहता हूँ, तीन कौड़ी ! आप नाराज़ क्यों होते हैं ? यह तो नीलाम की बोली है। दो कौड़ी से शुरू हुई है। एक ही बोल में काम कब होता है ? ज़रा सब्र करें ! आज की कौड़ी कल करोड़ हो सकती है।"

"नहीं तो"—कल्याणमल केडिया ने कहा—"तू ही बतला तेरी क़ीमत क्या है ?"

"लाख रुपये से कम मैं तो अपनी क़ीमत नहीं समझता।"-घमंडीलाल ने नाक फुला कर सुनाया।

"तो भाया तू जा! और छाप दे अपने अख़बार में जो जी में आये! अख़बार पुलिस नहीं है, कि हम डरेंगे। अख़बार के डर से मारवाड़ी जिस दिन बाज़ार से भागेगा, उस दिन रोज़गार-व्यापर का बेड़ा गर्क हो जायगा। लाख रुपया! लाख रुपया कभी आँख से देखा भी है? लाख रुपया आदमी तब कमाता है जब एड़ी का पसीना चोटी तक पहुँच है। जाता उसे तू कलम के एक धक्के से चाहता है? अख़बारवाले की यह हिम्मत डाकू से भी बढ़ी हुई नहीं तो क्या है?"

"फ़र्मा कसा जाय ?"—नाइट एडीटर से 'जगरक्षक' प्रेस के फ़ोरमैन ने पूछा।

"मगर, सेठ जी बोल गए हैं, कि उनके आने के पहले फ़र्मा मशीन पर न जाय !"

"फिर मैं ज़िम्मेदार नहीं, पेपर लेट हो जायगा। वक़्त पर डेलीवरी तैयार न रहने से बेवक़्त हॉकर मिलेंगे नहीं, जिन्हें छत्तीस जगह से छत्तीस पेपर लेकर बेचना पड़ता है !"

"मैं समझता हूँ, तुम्हारी बात"—नाइट एडीटर ने, कहा—"पर, आर्डर माने आर्डर ! वह जब हिदायत कर गए हैं, कि उनके आये बग़ैर फ़र्मा मशीन पर जाय नहीं, तब उसके विरुद्ध करना उचित नहीं !"

"आपको हिदायत वह मौखिक दे गए होंगे"—फ़ोरमैन ने सुनाया—"पर, मुझे तो लिखित आर्डर दे रखा है, कि इतने बज कर इतने मिनट पर फ़र्मा मशीन पर चला ही जाय। मैटर न हो, तो "विज्ञापन के लिए स्थान खाली' कंपोज़ कर जगह ब्लैंक छोड़ दी जाय, या वहाँ पर अपने प्रेस और पत्र का विज्ञापन छाप दिया जाय। एक बजकर पैंतीस मिनट पर फ़र्मा तैयार होना चाहिए। सवा बज चुका। १९ मिनट और प्रतीक्षा करके मैं तो फ़र्मा मशीन पर डाल देने के पक्ष में हूँ !"

"वह नाराज़ हों—तो ?"—एडीटर डरा।

"मेरे पास लिखित आर्डर है, मैं नाक पर रख दूंगा !"

"पर, मेरे तो बारह बज जायेंगे ?"—नाइट एडीटर ने कहा—"घमंडीलाल जी दोमुहें सांप की तरह दोनों तरफ़ से चलते हैं—चित्त

मेरा, पट भी मेरा, टेढ़ा मेरे बाप का !"

"डरते क्यों हैं ?" फ़ोरमैन ने कहा—"सम्पादक को निडर होना चाहिए। पर, सत्य यह है, कि सारी दुनिया को डरानेवाले पत्रकार स्वयं कांपते हैं—पुरवैया हवा में पीपल के पत्ते की तरह—इस डर से, कि कहीं नौकरी छूट न जाय ! नतीजा यह होता है..."

"क्या ?"

"कि जनता की जान जोखों में पड़ जाती है—नीम हकीमों के हाथ में !"

"ख़ूब हिन्दी तुम बोलते हो"—नाइट एडीटर चकित हुआ।

"हिन्दी के गढ़ छत्तीसगढ़ का रहनेवाला मैं जब से फ़ोरमैनी कर रहा हूँ तब से छत्तीस एडीटर देख चुका। १८ तो इसी 'जगरक्षक' कार्यालय में। हिन्दी में मिडिल पास हूँ, 'विशारद' भी हूँ, अब आप ही कहें, हिन्दी मुझे छोड़ बोलेगा कौन ?"

"हिन्दी का ऐसा ज्ञान होते हुए भी"—नाइट एडीटर ने पूछा—"तुम फ़ोरमैन क्यों हुए ? तुम्हें तो सम्पादक होना चाहिए था।"

"सम्पादक बनने से फ़ोरमैन बनना श्रेष्ठ जान कर ही मैं वह नहीं बना और यह बन गया।"

"सम्पादक से फ़ोरमैन उसी तरह बड़ा होता है जैसे जंगलवाले से गली के शेर बड़े होते हैं !"

"वैसे नहीं, फ़ोरमैन इसलिए बड़ा होता है कि"—फ़ोरमैन ने ज़रा चिढ़ कर सुनाया—"फ़ोरमैनी-कला का बरसों अभ्यास करने के बाद ही कोई फ़ोरमैन बन सकता है, पर, सम्पादक बनने के लिए किसी अभ्यास या विशेषता की ज़रूरत नहीं होती। नतीजा यह होता है, कि घसंडीलाल-जैसे जिस पर प्रसन्न होते हैं उसे ही सम्पादक बना देते हैं। मगर,

प्रसन्न होकर कोई अपने बाप को भी फ़ोरमैन नहीं बना सकता ! फ़ोरमैन, तो फ़ोरमैन ही होगा !"

"फिर भी, पोजीशन, बड़ा सम्पादक का ही है।"

"ख़ाक बड़ा"—फ़ोरमैन ने सुनाया—"पोजीशन हुनरसे बड़ा होता है, जो उनके पास होता नहीं ! फिर, तनख़्वाह की निगाह से देखिए तो एडीटरों से बेइज़्ज़त दूसरा मज़दूर नहीं ! फ़ोरमैन नक़्द काम करता है, सम्पादक उधार ! अख़बार के आफ़िस में सबके बाद तनख़्वाह पाता पाता है, तो सम्पादक—सबसे अधिक दांत दिखा कर ! अक्सर प्रेसके भंगीको भी पैसे नक़्द मिल जाते हैं; पर सम्पादक के भाग्य जब देखिए तभी उधार ! कारण ? अविशेषता। सौ में निन्नानवे पत्रकार कौड़ी-के-तीन भाववाले पकौड़ीलाल। जज की कुर्सियों पर देखो, तो जमाने के ज़रूरतमन्द !"

"बात तो तुम्हारी ठीक"—नाइट एडीटर ने मंजूर किया—"मैं ही दूसरा काम न मिलने तक पत्रकार हूँ—एम० ए० पास करने तक—पर, यह तो बताओ, जज की कुर्सी पर जज या सम्यक् सम्पादक कभी तुमने देखा भी है ?"

"क्यों नहीं,"—फ़ोरमैन ने सुनाया—"अब वे कम नज़र आने लगे हैं, स्वराज्य हो जाने के बाद, नहीं तो, जब तक आज़ादी की लड़ाई थी तब तक, अक्सर, तेज़ पत्रकार ही नज़र आते थे। स्वराज्य हो जाने के बाद अब नीति की पूछ ही न रही, तब जज की कौन ज़रूरत।"

"जगरक्षक-कार्यालय में भी कभी कोई ज़िम्मेदार सम्पादक तुम्हें नज़र आया ?"—पूछा पत्रकार ने।

"थे न कुछ दिनों पहले पंडित देवता प्रसाद शर्मा। वह सम्पादक थे। जिस दिन लिख देते थे उस दिन 'जगरक्षक' की प्रति बाज़ार में एक रुपये को भी दुर्लभ हो जाती ! जब से चले गए, पत्र की पूछ ही ख़त्म हो गयी। विज्ञापनवालों से घमंडीलाल पत्र का 'सरकुलेशन' २०

हज़ार बतलायें या ५० हज़ार, पर, दाई से तो पेट नहीं छिपाया जा सकता। पंडित जी के जाने के बाद पेपर की हवा ही निकल गई है। वह थे विशेष सम्पादक ! ठेंगे पर मारते थे घमंडीलाल को और अच्छे-अच्छों को !"

"फिर भी घमंडीलाल ने उन्हें बर्दाश्त किया ?" पूछा नाइट एडीटर ने।

"कहाँ कर सके बर्दाश्त संचालक जी ?"—फ़ोरमैन ने सुनाया—"दुधार गाय की चार लात भी बर्दाश्त, कहावत है; पर, बाबू साहब स्वयं भैंस हैं—दुगुन दुधार—सो, सम्पादक गउओं की इज़्ज़त उनकी आंखों में उतनी भी नहीं, जितनी कि भैंस की निगाह में तिनकों की। संचालक जी तो पं० देवता प्रसाद जी से नाराज़ ही रहते थे। क्यों ? इसलिए, कि उनके लेख चाव से पढ़े जाते थे ? 'जगरक्षक' में तेज और शक्ति घमंडीलाल का ही प्रकट होना चाहिए था; उधर तूती बोल रही थी पंडित जी की; सो, बाबू साहब शर्मा जी को निकालने के बहाने की तलाश में ही बराबर रहे। और बहाना स्वयं शर्मा जी ने घमंडीलाल के लिए तैयार कर दिया।"

"कैसे ?"

"वह एक दिन सिगरेट जला ही रहे थे, कि बाबू साहब आ गए। पंडित देवता प्रसाद सिगरेट बहुत पीते हैं," फ़ोरमैन ने श्रद्धा से सुनाया—"आते ही बाबू साहब ने शर्मा जी को टोका—क्यों पीते हैं आप यह चीज़ ? इसमें व्यर्थ ही पैसा ख़राब होता है। यह तो सरासर फ़िज़ूलख़र्ची है। इस पर शर्मा जी ने जो उत्तर दिया, वह वही दे सकते थे।"

"क्या उत्तर दिया पत्रकार-प्रवर-पंडित देवता प्रसाद शर्मा ने ?"

"सिगरेट दूर फेंक, जेब से दस रुपये का एक नोट निकाल कर देवता प्रसाद जी ने उसे सिगरेट की तरह 'गोलिया'। और फिर मुंह में लगा, दियासलाई जला आग दिखाने चले। 'अरे, अरे !' चकित बाबू साहब ने पूछा—"आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं ? दस रुपये से शाम तक मैं सौ—हज़ार तक बना सकता हूँ और आप उसे सिगरेट बना कर फूंक रहे हैं ? 'जी हाँ।' पंडित जी ने जवाब दिया था—फूंक यों देता हूँ, कि मुझे विश्वास है, बाज़ार में जहां भी परिश्रम की आग लेसूंगा वहीं पूंजी की रोटियां पक जायेंगी। यह मेरा दम्भ है। आपका दम्भ है संपादक से अधिक रुपये विज्ञापन बटोरक को देना। अनीति करना धन के लिए। मेरा दम्भ है उस धन को जिसे बनिया दुम से पकड़े दियासलाई लगा कर फूंक देना। इसलिए, कि हम सभी फुंक रहे हैं, महाकाल के मुंह में, चर्चिल-चुरूट की तरह। ये काले बाल अन्दर आग दबाए ठण्डी राखवाले चुरुट के सुलगते सिरे, धुंए की शिखाएं।' इस पर तनक कर बाबू साहब ने कहा—'ऐसे अनर्थ शास्त्री की ज़रूरत 'जगरक्षक' को क्यों कर हो सकती है। इसी बात पर मैं आपको जवाब दे दूं, तो क्या होगा ?'—पंडित जी भी दबे नहीं—'होगा क्या ? मुझ-जैसा पत्रकार आपको फिर नहीं मिलेगा और मुझे आप--जैसे रक्त-शोषक संचालक--बोटी देकर बकरा हज़म करनेवाले बिसयार मिलेंगे।'

"बिसयार क्या ?"— पूछा संपादक ने।

"बिसयार माने बहुत—अरे रे ! बीस मिनट होगये। अब मैं फ़र्मा कसता हूँ।"

घमंडीलाल काफ़ी रात गये 'जगरक्षक' कार्यालय में आया। मारवाड़ी सेठों को धमका कर अलीपुर से वह सीधा लाल बाज़ार याने कलकत्ता की मुख्य पुलीस कोतवाली में मि० गांगुली की तलाश में गया। गांगुली से बातें करने के बाद ही वह कार्यालय में लौटा था। छापने की मशीन दानवी-स्वर में हाहाकार करती पेपर छाप रही थी।

याने सुफेद को काला कर रही थी। घमंडीलाल धड़धड़ाता हुआ कार्या-लय के दोमंजिले पर संपादकीय-विभाग में पहुँचा। देखा, चिराग़ गुल। बत्ती जला कर देखा--दो मेजों को सटा कर सोया नाइट एडीटर। सीढ़ियों पर चढ़ते ही मशीन की आवाज़ से उसकी भृकुटियों में बल पड़ चुके थे, अब सम्पादक को सोता देख उसका धकियाया हुआ स्वार्थ या अहंकार सांप की तरह फन काढ़ कर खड़ा हो गया।

"सम्पादक जी!"--घमंडीलाल ने तीव्र-स्वर में पुकारा--"मि० नाइट एडीटर!"—फिर भी बिना झकझोरे दुर्भाग्य के थके-मांदे नाइट एडीटर की नींद टूटी नहीं। "श्रीमान् जी!"--नींद टूटते ही सामने संचा-लक को देख और पहचान चीते के आगे बकरे की तरह बेजान नाइट एडीटर ने भय से भभर कर कहा।

"यह सब क्या है?"—रुष्ट घमंडीलाल ने बिना दांत पीसे ही नाइट एडीटर को पीसते हुए सुनाया—"यह प्रतिष्ठित पत्र का दफ़्तर है या सराय? यह शुभ-लाभ-भर व्यापार का टेबल है या गन्द-गलित पाँव पसार कर सोने का कम्बख़्त तख़्त!"

"क्षमा कीजिए!"—उठते-उठते नाइट एडीटर घबरा कर गिर पड़ा संचालक के पाँवों पर प्रायः। पर, वह पसीजनेवाला कहाँ—"होश में आइये! आप नशे में तो नहीं? यह पत्र का कार्यालय है। यहाँ सोनेवाला हारता है और जागनेवाला जीतता है। आप मेरा बेड़ा ग़र्क करने के लिए ही यहाँ हैं?"

"अजी नहीं, संचालक जी"— गिड़गिड़ाया नाइट एडीटर, जैसे बीड़ी पीते रंगेहाथों गिरफ़्तार छोकरा हेड मास्टर के आगे गिड़गिड़ाता है—"अभी ज़रा नींद आ गई, सो भी फ़ाइनल फ़र्मा 'पास' करने के बाद ही ऐसी ग़लती मुझ से हुई है। मैं क्षमा चाहता हूँ। सारे दिन दौड़ कर चार ट्यूशन पढ़ाता हूँ जिससे काया का कचूमर निकल जाता है।"

"फिर आपने फ़र्मा भी छपने को दे दिया? इसलिए कि आपको नींद लग रही थी? क्यों न मैं समझूं यही? मुंह क्या देखते हैं? पहले मशीन बन्द कराइये, फिर बतलाइये, कि कितना कागज़ छप चुका है?"

"कागज आधे के ऊपर छप चुका है"—दरबान से संचालक के आने की सूचना पाते ही फ़ोरमैन भी ऊपर आ गया था।

"पहले मशीन बन्द कराओ, फिर दूसरी बात...फ़ौरन।"—गरज कर, नाक फुला कर, थूथन फड़का कर घमंडीलाल ने कहा—"सारे व्यर्थ छपे कागज़ों का घाटा आपकी और फ़ोरमैन की तनख़्वाह से पूरा किया जायगा। रोज़गार माने रोज़गार, ग़फ़लत माने गफ़लत।"

"मैंने फोरमैन जी को मना किया था"—सम्पादक ने कहा—"मेरे कहने के बावजूद फ़ोरमैन जी ने फ़र्मा मशीन पर डाल दिया। मैं क्या फ़ौजदारी करता? आप ही बतलाइये?"

तब तक फ़ोरमैन भी मशीन बन्द कर लौट आया था—"मैंने आर्डर के अनुसार ही काम किया है संचालक जी, किसी कानून से आप मेरी ग़लती नहीं साबित कर सकते।"

"मैं ग़लती कर नहीं सकता, तुम्हारी ग़लती है नहीं, फिर सिवा मुच्छड़ मुखी नाइट एडीटर महाशय के और किसकी ग़लती होगी?"

मुच्छड़ मुखी कह कर आप मेरे मुंह पर आक्रमण कर रहे हैं।"—नाइट एडीटर महाशय सिमियाये!

"पेपर फिर से छपेगा"—घमंडीलाल ने कहा—"और सारा नुकसान...लिखाई, छपाई और कागज़ के दाम इन्हीं की तनख़्वाह से वसूल किए जायेंगे।"

"संचालक जी,"—नाइट एडीटर ने दोहाई की आवाज़ में कहा—"मुंह के बाद यह मेरे पेट पर आक्रमण है। इसमें मेरा कुसूर ज़रा भी नहीं! फ़ोरमैन को मैं बराबर मना कर रहा था!"

"मैं पूछता हूं"—सावेश संचालक ने सुनाया—"जब मैं आफ़िस में आया तब आप सोते हुए क्यों मिले ? इसमें भी फ़ोरमैन का दोष है ?"

"आज ही ऐसा हुआ है, संचालक जी, क्षमा चाहता हूँ... आयंदा ऐसी चूक हर्गिज़ न होगी !"

"रोज़ ही ऐसा होता होगा"—घमंडीलाल ने सुनाया—"यह तो संयोग से आज मैं कार्यवश...।" कार्यवश शब्द मुंह से कहते ही जैसे घमंडीलाल को कोई 'कार्य' याद आ गया। क्षणमात्र में उसका ग़ुस्सा काफ़ूर हो गया—"क्या करने आकर क्या करने लगा। सह-योगी सही न हो, तो साधक की जगह बाधक बन जाते हैं—जैसे कि इस दफ़्तरवाले लोग हैं। मुंह मत देखिए। जल्दी से काग़ज़, क़लम लेकर जो मैं कहता हूँ...लिखिये !" फिर फ़ोरमैन की तरफ़ देख कर घमण्डीलाल ने कहा—"कितने कम्पोज़ीटर हैं ?"

"पाँच, मुझे मिला कर।" फ़ोरमैन ने बतलाया।

"पाँच नहीं, ६—मुझे भी मिला कर"—घमण्डीलाल ने कहा—"तुम्हें मालूम होना चाहिए, कि प्रेस का अदना-से-अदना तक कोई भी ऐसा काम नहीं जिसे मैं न कर सकूं ! एक केस मेरे लिए भी ख़ाली और तैयार रखो ! हम सभी मिल कर कपोज़ करेंगे तब कहीं सवेरे बाज़ार में उस समाचार के साथ अख़बार जा सकेगा जिसके लिए इतनी रात तक मैं झख मार रहा था !"

"फिर भी,"—फ़ोरमैन ने बतलाया—"पेपर काफ़ी लेट हो जायगा और एक बार लौट जाकर हॉकर फिर मिलेंगे नहीं !"

"हॉकर तो इस तरह मिलेंगे, कि तुम देखोगे !"—संचालक ने कहा—"फिर भी, हॉकर लौट जाय, तो कंपोज़ीटरों को रोक रखना !"

यों ?"

"आज इन्हीं से अख़बार बेचवाऊंगा !"

"हॉकरों की तुलना में कंपोज़ीटर वैसे ही हैं जैसे दरबानों की तुलना में क्लार्क। एक दौड़नेवाला है पांव से—हरकारा, दूसरा करने वाला है हाथ से, कारीगर। कम्पोज़ीटर हॉकर से ऊंचा है !"

"अख़बार के हॉकर तो अमरीका के अनेक बड़े-बड़े आदमी रह चुके हैं। मेहनत का काम कोई हो छोटा नहीं। फिर, कलकत्ते में तो हॉकर और कम्पोज़ीटर दोनों ही पेशों में ऊंची जाति के लोग हैं !"

"कम्पोज़ीटर राज़ी न हों तो ?"

"मैं अख़बार बेचने निकलूंगा। लिखिये !"—घमण्डीलाल ने नाइट एडीटर को 'डिक्टेट' कराना शुरू किया।

हॉकर लोग सचमुच आकर, झुंझला कर लौट गए! 'जगरक्षक' अभी मशीन पर ही था। जाते हुए हॉकरों को धमकाते हुए घमंडीलाल ने सुनाया—"आज समय पर पेपर अगर बाज़ार में तुम लोगों ने नहीं पहुँचाया, तो—ख़ैर काम तो नहीं रुकेगा, पर, आज के बाद मामूली कमीशन पच्चीस की जगह बीस ही टके में दूंगा—याद रखना !"

हॉकर चले गए। कुड़बुड़ाते हुए, कि कमीशन कम मिलेगा तो वे 'जगरक्षक' बेचेंगे ही नहीं। और केवल दैनिक 'दामोदर' का प्रचार करेंगे। मगर, पेपर तैयार होने पर कम्पोज़ीटर को हॉकरों का काम करने पर राज़ी कर चतुर घमंडीलाल ने लोहे से लोहे को काट दिया। अख़बार में सनसनीख़ेज़ सम्वाद तो थे ही.. बिक्री हाथोंहाथ लंगड़े आमों की तरह होने लगी! सो, लोभ से लोलुप हॉकर पुनः 'जगरक्षक' कार्यालय में दौड़े हुए आये। मगर, अब घमंडीलाल को देखो तो निष्ठुर! लाचार झखमार २५ की जगह २० ही प्रतिशत कमीशन पर उन्हें उस दिन सौदा करना पड़ा !

उस दिन 'जगरक्षक' में अलीपुर के बंगले का सारा कांड नमक-मिर्च के साथ छपा था। केवल घटना-स्थल, पुलीस अधिकारी और सम्बद्ध लोगों के नाम नहीं छापे गये थे! इस सूचना के साथ कि—"तीन दिनों के अन्दर अगर सम्बन्धित व्यक्तियों ने आत्म-सुधार का वचन संचालक 'जगरक्षक' को लिखित नहीं दिया तो, चौथे दिन बड़े खेद के साथ, लोकहितार्थ, समाज के कोढ़ियों के नाम पेपर में सविस्तर छाप दिये जायँगे!

रासभ वाहन : १६

"मारवाड़ी समाज बुरा"—'जगरत्तक' पढ़ने के बाद एक तरह की पब्लिक बोली।"

"'जगरत्तक' अख़बार बुरा। बड़ा बाज़ार के सभी अख़बार बुरे !" दूसरी तरह की पब्लिक ने कहा।

"यादृशी शीतला देवी तथा रासभ वाहनः!"—तीसरी तरह की पब्लिक ने कहा—"जैसी शीतला देवी हैं वैसा ही उसका वाहन है—गधा! अख़बार को बुरा जानते हुए भी बर्दाश्त करना, व्यभिचारी डाक्टर को परिवार में घुसाने की तरह जीने के धोके कुत्ते की मौत मरना है!"

"पूछो"—एक ने संदेह भरे भाव कहा—"घटना छाप दी, मगर नाम लोगों के छिपा लिये। इस पर अगर पूछिए, कि पर्दा डालने की चीज़ को उघाड़ना क्यों? तो, कहेंगे—पब्लिक की जानकारी के लिए। फिर पब्लिक की जानकारी के लिए नाम क्यों नहीं छाप दिये?"

"दाम के लिए!"—दूसरे ने दृढ़ता से सुनाया—"इस वर्णन को मोटे मारवाड़ी जब पढ़ेंगे और बाज़ार में जाकर कोलाहल सुनेंगे, तो सिवा इसके, कि घबरा कर 'जगरत्तक'-संचालक की शरण जायँ और क्या करेंगे?"

"ठीक कहा,"—तीसरे ने समर्थन किया—"और तब मारवाड़ की ऊँटनी को यू० पी० का भूत दुहने बैठेगा। कस कर सौदा होगा। आज शाम तक सेठों की तिजोरियों से 'जगरत्तक' कार्यालय में जितनी भी रक़म पहुंचे अधिक नहीं!"

"और तब निश्चत दिन 'जगरक्षक' में नाम नहीं छपेंगे !"

"और नहीं तो क्या ?"

"यह अख़बार-नवीसी है, कि चार-सौ-बीसी ? जनता के सामने जो चाहा परोस दिया और फिर जब जो चाहा सामने से समेट लिया। यही ईमानदारी है ? यही ज़िम्मेदारी है ?"

"अजी सूचना निकाल कर वायदा किया है, तो नाम 'जगरक्षक' के बाप को छापना पड़ेगा।"

"भैया की बातें ! कितने दिनों से आप कलकत्ते रहते हैं ? मैं तो गत बीस वर्षों से देख रहा हूँ—यह 'जगरक्षक' अव्वल दर्जे का हराम-ज़ादा अख़बार है। गत बीस वर्षों में, कुछ नहीं तो, लाखों रुपये इस-या-उस कुमौके पर आंख-के-अन्धों गांठ-के-पूरों को धमका कर इसने ऐंठे हैं।"

"मैं तो नया आया हूँ, पर कलकत्ते की जनता या हिन्दी-भाषी जनता घमंडी लाल के अनाचरों को बर्दाश्त क्यों करती है ?"

"क्योंकि, उत्तर भारत या बिहार या बाहर से आनेवाले इस शहर में आते हैं पैसों के लिए, लड़ने-मरने-खपने को; न कि आदर्श या नीति की स्थापना के लिए युद्ध करने। फलतः उनका (या व्यक्ति विशेष का) पेट बचा कर कोई परमात्मा की भी मिट्टी पलीद कर दे, तो भी यहां कोई पुर्साहाल न होगा !"

"वर्तमान काल में परमात्मा को भुलाया जा सकता है, पर 'पेपरों' को नहीं ! दुर्भाग्य से आज सारे जाग्रत जगत् की जनता अख़बार की बात को 'श्रीभगवान् उवाच' या वेद वाक्य मानती है। जनता याने हम-आप जिस सरोवर से जीवन प्रफुल्लित रखते हों उसे तो स्वच्छ रखना ही होगा। प्रेम से—प्रसाद या प्रकोप से से—जैसे भी !"

कैसा दुर्भाग्य !"—एकने सखेद सुनाया—"राष्ट्रभाषा हिन्दी के

नाम पर कलकत्ते से आधा दर्जन दैनिक निकलें, पर, पढ़ने काबिल एक भी नहीं! सभी ऐसे जिनका बच्चों को टट्टी कराने के अलावा अन्य कोई उपयोग मुमकिन नहीं!"

"अख़बारनवीसी का आदर्श क्या होना चाहिये?"

"जन-सेवा, सज्जन-सत्कार और दुर्जन-सुधार। असिल अख़बार-नवीस न्याय और व्यवस्था का सिपाही है। उसमें और पुलिस में महज़ इतना ही फ़र्क़, कि पुलिस सरकार से तनख़ाह लेकर जनसेवा करती है और वह अमूल्य सेवा करता है! मेरे मते असिल पुलिस अख़बार-नवीसी हैं, न कि कोतवालीवाले। पत्रकार भारतीय सन्त-परम्परा का नवयुगीन संस्करण है—अगर वह अपना कर्तव्य जानता है—नहीं तो, घमंडीलाल है, 'जगरक्षक'—संचालक!"

"नाश हो इस घमंडीलाल का!"—किसी ने घृणा से भर कर कहा—"जब से इसके सब्ज़ क़दम इस महानगरी में पड़े तभी से बड़ा बाज़ार में हिन्दी का पतन शुरू हुआ। इसकी अख़बार-नवीसी का उद्देश्य जनसेवा नहीं, सद्विचार-प्रचार नहीं, उद्देसय है लटामांसी वस्तुओं के विज्ञापन छाप, धन बटोर, महल खड़ा करना मात्र!"

"पागल है आदमी, अदूरदर्शी," एक वृद्ध ने सुनाया—'कमाई ईमान की ही टिकाऊ होती है। लहू-लोहान कमाई से चिपके अनेक अनर्थ अवसर देखे जाते हैं। एक ने अनेक को लट कर जब लाखों के गहने अपनी प्रियतमा के प्रीत्यर्थ प्रस्तुत किए तब वह, सारे मालमते के साथ, किसी ग़रीब नौजवान के साथ यों लापता हो गई, कि लाख हुलिया पुलिस कराने पर भी आज तक कोई पता नहीं चला!"

"बड़ी बदमाश औरत थी!"

"बदमाश के माने अगर हम सही समझें, तो, औरत नहीं, मर्द ही बदमाश साबित होगा। 'बद' माने बुरा, 'मआश' जीविका, भोजन।

बुरे ढंग से जो अपना भोजना कमाये वही बदमाश। सो, अविवेक से कमानेवाले, ब्लैक से कमानेवाले ही सही मानों में बदमाश कहे जा सकते हैं! बुरी तरह से धन कमाने का दंड मिला उस लखपती को जिसकी औरत भरी जवानी में सर-से-पाँव तक सोने में सज कर किसी और के साथ 'हनीमून' मनाने 'अंडर आउंड' चली गयी! ईश्वर के यहाँ देर हो, पर अन्धेर नहीं होता। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।"

"ऐसा होता, तो अब तक घमंडीलाल के सौभाग्य के आकाश में भी दंड के दुर्ग्रह, दाह के धूम्रकेतु, प्रकट हो चुके होते। उलटे वह तो रोज़-रोज़ मोटता याने चूहे से कुत्ता और कुत्ते से सूअर बनता चला जा रहा है!"

"ऐसी बात नहीं।"—वह पुनः बोला—"घमंडीलाल के भी आकाश में दंड और दाह के धूमिल धूम्रकेतु उसके पुत्रों के रूप के प्रकट हो चुके हैं? पाँच के पाँचों पंच मकारी! पाँचों अपने बाप से पंचगुने प्रपंच-पंडित! मुझे अच्छी तरह मालूम है, घमंडीलाल ज्यों-ज्यों बूढ़ा हुआ जा रहा है-त्यों-त्यों अनीद-रोग का रोगी भी हुआ जा रहा है! क्यों? वह तो लाखों कमज़ोरों की सफलताओं का फलाहार करनेवाला सफल मनुष्य है न? चर्बीला ह्वेल मत्स्य? फिर, उसे भी नींद क्यों रात भर नहीं आती? उत्तर स्पष्ट है। सारी रात उसका उत्तम-मन अधम की भर्त्सना करता है—रे नीच! ले देख-बुरी कमाई का परिणाम मुर्दों के मुंह से भी निकाल कर जो धन तू ने जोड़ा—तप कर, खप कर—उसे तेरी नालायक औलाद यों बर्बाद करेगी, जैसे दीमक-दल दुर्दशा करे क़ीमती काश्मीरी कम्बल की। ओ बदमाश! देख, बदमाशी का नतीजा! जो चाहे वही आकर देख ले, दुनिया के पापों को प्रेस की काली स्याही से धो डालने का दंभ पालनेवाले का मुंह लाका हुआ

आ रहा है—दिन दहाड़े—अपने अन्तर के, घर के प्रकाशों से !"

"अच्छा घमंडीलाल की मृत्यु के बाद कितनी देर लगेगी उसकी काग़ज़ी सम्पति के सत्यानाश में ?"

"नज़दीक से दियासलाई दिखाने के बाद पेट्रोल पम्प के उड़ने में कितनी देर लगती है ?"

"नियति के दंड की प्रतीक्षा में प्रसन्न रहना कायरता है ।"—एक ने कहा—"वह जनता का, राष्ट्र का, राष्ट्रभाषा का नाश किये जा रहा है और हम हैं कि काल की प्रतीक्षा, तितिक्षा, पाल रहे हैं । तमाशा तो देखो ! हम यहां गाल मार रहे हैं और वह वहां टेलीफ़ोन के गद्यगीतों पर सेठों की तिजोरियां नचा रहा है !"

"तो परसों के 'जगरक्षक' में उन आदमियों के नाम नहीं प्रकाशित होंगे ?"

"गठरी मिल जायगी—जो कि निश्चित है—तो लिस्ट ज़रूर रोक ली जायेगी !"

"और जनता से किया वायदा ?"

"घमंडीलाल के अनुसार जनता अख़बार के लिए है, न कि अख़बार जनता के लिए । अख़बार का जनता से वही सम्बन्ध है जो नेता का भीड़ से या गड़रिये का भेड़ों से; जिन्हें वे विचारों के चारे चराते हैं बहका—बहला कर दुहने और ऊन उतारने के लिए ।"

"कुछ को कुछ दिन और बहुतों को बहुत दिन भले ही कोई ठग ले, पर, सबको सब दिन ठगना असम्भव है । किसी दिन 'जगरक्षक' वालों को लेने के देने पड़ जायेंगे !"

जिस दिन 'जगरक्षक' में समाज के कोढ़ियों के नाम छपने वाले थे उस दिन भी पेपर लेट हो गया था । याने सवेरे सब पत्रों के साथ "जगरक्षक' हॉकरों के हाथ में नज़र नहीं आया । इसके पहले तीन दिनों

तक उस अख़बार में तरह-तरह से सेठों को धमका कर जनता में वह उत्सुकता पैदा कर दी गयी थी, कि हॉकरों के पास पत्र न था कितने ही सवेरे टहलनेवाले शौकीन 'जगरक्षक' कार्यालय जा धमके थे जहाँ पर अनेक हॉकरों के आदमी लाइन बनाए डटे हुए थे।

"कब पेपर निकलेगा ?"—किसी ने हॉकरों से पूछा।

"आज इतनी देर क्यों हुई ?"—किसी दूसरे ने दरियाफ़्त किया।

"दो बजे रात तक सेठों से सौदा पटाया जा रहा था,"—एक हॉकर ने बतलाया "—पाँच बजे सवेरे तो फ़र्मा मशीन पर गया है। 'जगरक्षक' प्रेस के एक कर्मचारी ने बतलाया, कि सेठों से सौदा हो गया। घमंडीलाल की गोटी लाल हो गयी। अब किसी का नाक-नाम छपने वाला नहीं।"

"याने ?"—एक ने पूछा—"यह सारा कोलाहल जनता के नाम पर पूंजीपतियों को ठगने मात्र के लिए था ? जनता न हुई भेड़ हो गयी जिसे ये अख़बारवाले चाहे जिस लकड़ी से हाँके ?"

"सच तो यही है"—हॉकर ने सुनाया—"जनता भेड़ ही है जिसे चरवाहे की तरह अख़बारवाले चराते हैं। यह लो 'जगरक्षक' आ गया !"

"जनता को चराना सांप से खेलना है।"

दस पाँच नहीं, दो ढाई-सौ पत्र-प्रेमी जगरक्षक' कार्यालय के फाटक पर एकत्र हो गए थे। जितने पेपर कार्यालय के बाहर आये हाथों हाथ बिक गये।

"लो, नाम नहीं छापा न ?"

"अजी, सेठों से रकम मिल गयी, जो कि घमंडीलाल की अख़बार नवीसी का मुख्य उद्देश्य है। नाम छापने की ऐसीतैसी !"

"ऊपर से पाठकों को बेवकूफ़ कैसा बनाया है। लिखता है, कि वह सूचना सत्य नहीं, कोरी कहानी थी। कहानी पर लोगों का यों विश्वास करना ही उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करता है।"

"झूठी बात!"—एक पाठक ने कहा—"सेठों से रुपये लेकर पेपर-वाला बदल गया है।"

"और यह रुपये हमारे याने जनता के भय से घमंडीलाल को प्राप्त हुए हैं।"

"यह पत्रकारिता नहीं, पाप है।"

"पाप ही नहीं, ऐसा पत्र सारे जनपद के लिए अभिशाप है।"

"कहाँ है घमंडीलाल—संचालक 'जगरक्षक'? वह हमें बार-बार ठगता क्यों है?"

"कहाँ है घमंडीलाल?"

"घमंडीलाल मुर्दाबाद!"

मामला संगीन देखते ही घमण्डीलाल ने लाल बाज़ार टेलीफ़ोन कर पुलीस बुलायी। लोग इतने उत्तेजित थे, कि पुलीस ने लाठी-चार्ज कर सबको तितर-बितर न कर दिया होता, तो 'जगरक्षक' कार्यालय में घुस कर घमण्डीलाल की पूरी ख़बर लेते।

※ बस ※

'कढ़ी में कोयला' का

मालेमस्त--मारवाड़ी—खण्ड समाप्त